अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-09, 16-31 दिसंबर, 2016

बेनीपुरी और जेपी एक-दूसरे के हृदय में बसते थे

''बिहार की भूमि उर्वरा है। यहां के किसान सदा खुशहाल रहे। किन्तु इन खुशहाल किसानों पर कार्नवालिस ने जमींदारी का जुआ रखकर उन्हें दुर्गत की गाड़ी में जोत दिया। जो कभी जमीन के मालिक थे, वे अर्द्धदास बन गये।

जब नील की खेती शुरू हुई, किसानों की दुर्गत और बढ़ी। अंग्रेज कोठीवाले आये और बिहार के–खासकर उत्तर बिहार के–कोने-कोने में छा गये। बड़े पैमाने पर ये खेती करते, किसानों से जमीन लेते, बेगार लेते, क्या-क्या नहीं लेते।''

- रामवृक्ष बेनीपुरी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 09, 16-31 दिसम्बर, 2016

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. विज्ञान–वस्तुपरक युक्ति-संगतता... 2
2. विकराल अकाल... 3
3. स्वयं को बदलने की आवश्यकता... 7
4. किसान आंदोलन... 8
5. बेनीपुरी और जेपी एक-दूसरे के... 10
6. लघु-कथा : घासवाली... 14
7. राजनीति को लतीफा बना दिया जाना... 15
8. देश बचाना नहीं है विकास का... 16
9. प्रत्येक धर्म का सम्मान हो... 18
10. गतिविधियां एवं समाचार... 19
11. कविताएं... 20

संपादकीय

विज्ञान–वस्तुपरक युक्ति-संगतता एवं चेतना

वर्तमान विज्ञान के विकास के दो मूल आधार रहे हैं। एक वस्तुपरकता यानि Objectivity तथा मात्रा-मापन अर्थात Measurement.

वर्तमान विज्ञान जिसका अध्ययन करता है, उसे पहले शुद्ध वस्तु या पदार्थ के रूप में स्थापित करता है। और, अध्ययन की जा रही वस्तु के व्यवहार के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यदि उस पदार्थ पर एक क्रिया दोहराई जाये या यदि पदार्थ समान स्थितियों एवं प्रक्रियाओं से गुजरे तो उसका परिणाम भी वही होगा, जो पहले हुआ था। अर्थात पुनरावृत्ति की अवधारणा पर आधारित है विज्ञान। तमाम अवलोकन, आंकड़ों तथा सांख्यिकी का इस्तेमाल इसीलिए किया जाता है कि बड़ी संख्या में उन्हें इकट्ठा कर उनके आधार पर कोई पैटर्न (Pattern) या सिद्धांत बनाया जा सके।

दूसरी बात विज्ञान उसी दायरे तक सीमित रहता है, जिसे मापा जा सके। जिस चीज को मापा नहीं जा सकता वह विज्ञान के दायरे से बाहर है। यहां तक तो ठीक है। लेकिन समस्या तब आती है जब यह दावा किया जाता है कि जो विज्ञान के दायरे के बाहर है या उसके मापन के दायरे के बाहर है, उसके अस्तित्व को ही नकार देना।

सभ्यता के संदर्भ में विज्ञान का सवाल इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हमने सभ्यता के विकास के केन्द्र में चेतना को रखा है, जबकि वर्तमान योरोप उद्‌भूत सभ्यता के केन्द्र में तथा उसके विकास में विज्ञान को रखा गया है।

वर्तमान विज्ञान चेतना के ज्ञान, उसके विकास की प्रक्रिया जानने तथा उसका मापन करने में पूर्णतः अनुपयुक्त है।

चूंकि व्यापक व सूक्ष्म चेतना को पकड़ना या समझना इस विज्ञान के दायरे के बाहर की बात थी, इस कारण व्यापक व सूक्ष्म चेतना की अवधारणा को नकार कर उसके स्थान पर वस्तुपरक युक्ति संगतता को स्थापित किया; फिर इसे ही व्यक्ति के व्यवहार तथा नयी सभ्यता के निर्माण का आधार बनाया गया।

वस्तुपरक युक्ति-संगतता ही वर्तमान उद्योग के औचित्य को तथा उस उद्योग से जनित यांत्रिक मानसिकता को व्यापक बनाने का कारण बनी।

वस्तुपरक युक्ति-संगतता व बौद्धिकता : वर्तमान सभ्यता में वस्तुपरक युक्ति-संगतता एवं बौद्धिकता ने अपना स्थान बनाते हुए किन सत्त्वों को नष्ट किया है, पहले हम उसकी चर्चा करेंगे। ताकि यह स्पष्ट हो सके कि इसकी वास्तविक भूमिका क्या रही है।

1. इसने प्रज्ञा के विकास के आधार पर ज्ञान (बुद्धत्व) को उपलब्ध होने की स्थिति को स्थान नहीं दिया है। अर्थात चेतना के उच्च से उच्चतर सोपान की यात्रा वर्तमान युक्ति-संगतता एवं बौद्धिकता के दायरे के बाहर है; अतः सभ्यता निर्माण का तत्त्व नहीं है।

2. युक्ति-संगतता व बौद्धिकता ने 'आदर्श' के स्थान पर अधिसंख्य लोगों के सामान्य व्यवहार को स्थान दिया। इसके लिए व्यक्ति के 'हित-साधन' एवं 'उपयोगिता' की सिद्धि की युक्ति को युक्ति-संगत व बौद्धिकतापूर्ण माना गया।

3. इस स्वार्थ हित साधन व उपयोगिता के आधार पर ही सारी पूंजीवादी एवं पूंजीवादी बाजार का औचित्य खड़ा किया गया।

4. चेतना के उच्च से उच्चतर सोपान की यात्रा को इस सभ्यता की युक्ति-संगतता एवं बौद्धिकता के बाहर कर दिये जाने के फलस्वरूप बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, कबीर आदि ज्ञान को प्राप्त व्यक्ति सभ्यता के नियामक नहीं रह जाते। फलस्वरूप युक्ति-संगतता एवं बौद्धिकता, इन ज्ञान प्राप्त महापुरुषों की प्रज्ञा के साथ किसी भी प्रकार के प्रभावी संवाद को काट देती है।

5. अर्थात सत्य का जो आदर्श है, उसे नकार कर व्यक्ति के निहित स्वार्थ एवं उपयोगिता की पूर्ति के लिए जो व्यवहार सम्पन्न होता है वही युक्तिसंगत बौद्धिक व्यवहार के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है और इस विज्ञान की मानसिकता के अंतर्गत, इसे ही सामाजिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है।

अंततः यह सामान्य मानसिकता की गिरावट का भी कारण बनता जाता है। इसी कारण गांधी ने इसे शैतानी सभ्यता कहा। बिमल कुमार

25 दिसंबर : मालवीय-जयंती

विकराल अकाल

❑ पं. मदनमोहन मालवीय

वे भारत के रत्न ही थे। सन् 1907 में देश के अकाल पर उन्होंने जो काम किया, जो कुछ लिखा-कहा, वह सब यही बताता है कि वे भारत रत्न थे। उन्होंने तब अकाल और रेल का संबंध भी जोड़ा था। देश का अन्न रेलों के जरिए किस तरह खींच कर विलायत भेजा जाता है और फिर किस तरह यहां महंगाई बढ़ती जाती है—इस पर मालवीयजी की चिन्ता कितना कुछ बता जाती है। उस जमाने में लोग भूखमरी से कैसे बचें और देशवासियों की आय कैसे बढ़े, इस संदर्भ में मालवीय जी का यह आलेख देशी अर्थशास्त्र ही है। **–सं.**

पिछले दस वर्ष में हिन्दुस्तान की अभागी प्रजा में से सरकारी रिपोर्टों के अनुसार 55 लाख प्राणी प्लेग के कलेवा बन चुके हैं। किन्तु इतने पर भी इस देश पर दैव का कोप शांत होता नहीं दीख पड़ता। पानी के कम बरसने से देश में एक बड़ा भयंकर अकाल उपस्थित है। एक फसल तो मारी ही जा चुकी है, किन्तु यदि अब भी पानी बरस जाए तो आगे की फसल की कुछ आशा हो जायेगी।

इस देश में अंग्रेजी राज्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन से प्रारम्भ हुआ और वह शासन नब्बे बरस तक रहा। उस बीच में हिन्दुस्तान के किसी न किसी भाग में बारह बार अकाल पड़ा और चार बार बहुत महंगी की व्यथा भी हुई। किन्तु उन दिनों के अकाल की पीड़ा कम करने का कोई यत्न कम्पनी की ओर से नहीं हुआ।

जब से इंग्लैण्ड की रानी ने हिन्दुस्तान का शासन अपने हाथ में लिया, तब से हिन्दुस्तान के किसी न किसी भाग में आठ बार अकाल पड़ा है। और एक बड़ी महंगी हुई थी, जिसकी दशा अकाल से थोड़ी सी कम थी। गवर्नमेंट ने सन् 1880 में एक फैमिन-कमीशन नियुक्त किया। उस कमीशन ने इस बात को पूरी तरह पर स्वीकार किया कि गवर्नमेंट का यह धर्म है कि अकाल के समय में उन सब लोगों को सहायता दे, जिनको सहायता की आवश्यकता है। 1897-98 में जब बड़ा भयंकर अकाल पड़ा था, उस समय इस सिद्धांत के अनुसार सर एंटोनी मैकडॉनल ने इन प्रांतों में अकाल से पीड़ित प्राणियों की सहायता का बहुत उत्तम प्रबंध किया। 1873 के बिहार के अकाल के समय लार्ड नार्थब्रुक ने उदारता से प्रजा को बचाने का जो प्रबंध किया था, उसके उपरांत देश की प्रजा गवर्नमेंट को उस प्रबंध के लिए पूर्ण रीति से धन्यवाद कर चुकी है। उसके उपरांत 1899-1900 में जो मध्य प्रदेश, बरार, बम्बई, अजमेर, पंजाब में बहुत बड़ा अकाल पड़ा, उसमें इंडिया फैमिन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार गवर्नमेंट ने पंद्रह करोड़ रुपयों के लगभग प्रजा की सहायता में व्यय किये।

अब जो अकाल देश के सामने उपस्थित है, उसके लिए भी हम लोग आशा करते हैं कि जहां-जहां अकाल है, प्रत्येक प्रांत की गवर्नमेंट वहां-वहां प्रजा की सहायता के लिए उदार उत्तम प्रबंध करेगी। हमको यह देखकर संतोष होता है कि संयुक्त प्रांत की गवर्नमेंट ने प्रजा को सहायता देने का प्रबंध प्रारम्भ कर दिया है। इस सबके लिए हम गवर्नमेंट का धन्यवाद करते हैं और करेंगे, किन्तु हम यह कहना अपना धर्म समझते हैं कि यद्यपि ऊपर लिखे उपाय प्रशंसनीय हैं, यथापि वे प्रजा को अकाल की आहुति होने से बचाने के लिए पूरे नहीं हैं। *सर एंटोनी मैकडॉनल का अति-प्रशंसित प्रबंध होने पर भी 1897 के अकाल से मि. डिग्वी के अनुसार, 60 लाख से ऊपर प्राणी कम हुए थे। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि असंख्य मनुष्यों को भूख की आग में झुलस कर मरने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि गवर्नमेंट अकाल के समय देश से अन्न को विदेश जाना रोक दे।*

हम जानते हैं कि आजकल के इंग्लैंड के कुछ अर्थशास्त्र के पंडित हमारे इस प्रस्ताव का उपहास करेंगे; किन्तु प्रजा की रक्षा का भार गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के ऊपर है और उसके अधिकारियों का यह धर्म है कि वे इस प्रस्ताव को हिन्दुस्तान की प्रजा की गवर्नमेंट की आंख से देखें, न कि इंग्लैंड और यूरोप के उन अर्थशास्त्र के पंडितों की आंख से, जिन्होंने हिन्दुस्तान की विशेष अवस्था पर विचार नहीं किया। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनको यह निश्चय हो जायेगा कि अकाल के समय में देश के अन्न को विदेश जाने से रोकना उनका प्रथम कर्तव्य है। रेलों के बनने से देश को बहुत लाभ हुआ है। एक प्रांत में अकाल पड़ने से दूसरे प्रांत से जो अन्न सहज में पहुंचा दिया जाता है, यह रेलों के बनने का एक बड़ा अनमोल लाभ है।

किन्तु जो रेलों का बनाना एक अंश में प्रजा के लिए हितकारी है, वहीं दूसरे अंश में उनके लिए अत्यन्त अहितकर हो रहा है। यह रेलों का ही सुभीता है, जिसके कारण रैली ब्रदर्स के समान अन्न के व्यापारी हिन्दुस्तान के गांव का अन्न खींचकर अपने स्वार्थ के लिए विलायत को भेजते हैं। इसका एक विषमय फल यह हुआ है कि अब इस देश में जहां अन्न बहुतायत से होता है, बारह महीने अकाल का-सा भाव छाया रहता है और सबसे अधिक हृदय को बेधने वाली

बात यह है कि जबकि एक विकराल अकाल देश के सामने खड़ा हुआ है, उस समय भी प्रति सप्ताह लाखों मन अन्न हिन्दुस्तान से विलायत को ढोया चला जाता है। हम विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि यदि गवर्नमेंट हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रजा की सम्मति पूछे, तो थोड़े-से गिने-चुने पुरुषों को छोड़कर, जो अन्न को देश के बाहर भेजकर और अपने जाति-भाइयों को पीड़ा पहुंचा कर लाभ उठाते हैं, सब लोग एक स्वर से यह कहेंगे कि अन्न को निष्कंटक देश के बाहर जाना बंद करना प्रजा के प्राण की रक्षा के लिए पहली आवश्यकता है।

यह मत जिस पर हमने ऊपर प्रकाश किया है, इसके समर्थन में हम मिस्टर हारेस वेल के उस व्याख्यान का स्मरण दिलाते हैं, जो उन्होंने 1901 में लंदन की 'सोसाइटी ऑफ आर्ट्स' के सामने पढ़ा था। उनका मत जितना आदर पाने के योग्य था, उतना उस समय नहीं पाया। किन्तु बार-बार पड़ते हुए अकाल और गवर्नमेंट का सहायता पहुंचाने का प्रबंध होने पर भी उनसे होती हुई असंख्य प्राणियों की प्राण-हानि, मिस्टर वेल के प्रस्ताव का पूर्ण रूप से समर्थन करती है। *हम यह नहीं कहते कि अन्न का विदेश जाना सब दिन के लिए बंद कर देना चाहिए। हम केवल यही कहते हैं कि अन्न के विदेश जाने के विषय में वैसे विवेकयुक्त कानून बनाये जाएं जैसे कि इंग्लैंड में उस समय जारी किये गये थे, जब वहां उनकी आवश्यकता थी।* सन् 1771 के कानून के अनुसार इंग्लैंड में ऐसा प्रबंध किया था कि जब गेहूं 44 शिलिंग का एक क्वार्टर तक बिकने लगे, तब गेहूं का देश से बाहर भेजना बंद कर दिया जाये। 1791 में अन्न का दूसरा कानून इंग्लैंड में बना था, उसके अनुसार जब गेहूं 46 शिलिंग का एक क्वार्टर बिकने लगता था, तब उसका बाहर भेजना बंद कर दिया जाता था। इस नीति से इंग्लैंड के निवासियों को कितना लाभ पहुंचा, इस बात को लैकी ने अपने 'इंग्लैंड के इतिहास' के छठे भाग में बहुत अच्छी तरह दिखाया है।

इसी उदाहरण को लेकर यदि गवर्नमेंट ऐसा कानून बना दे कि जब गेहूं देश में रुपये का बारह सेर बिकने लगे, तब गेहूं का विदेश जाना बिलकुल बंद कर दिया जाए और जब पंद्रह सेर तक बिकता रहे तब तक बाहर जाने वाले गेहूं पर टैक्स लगा दिया जाए, तो ऐसा करने से गेहूं के उपजाने वालों को कोई हानि नहीं पहुंचेगी और प्रजा बारह महीने महंगी की व्यथा से और दुर्भिक्ष के समय अकाल-मृत्यु से बचेगी। इस प्रकार से चावल तथा अन्य भोजन के पदार्थों के विषय में भी नियम बनाना चाहिए। हम आशा करते हैं कि मनुष्य जाति के हित के लिए हमारे इस प्रस्ताव पर गवर्नमेंट उचित गौरव के साथ विचार करेगी।

इस समय हमारे देश में विचारवान देश-हितैषियों के विचारार्थ नाना प्रकार के जितने विषय उपस्थित हैं उन सब में अन्न का विषय सबसे गंभीर, आवश्यक और चिन्ताजनक है। *भारतवर्ष की भूमि संसार-भर में सबसे अधिक उपजाऊ है; तब भी अन्न बिना जितना कष्ट भारतवासियों को उठाना पड़ता है, उतना किसी देश के मनुष्यों को नहीं उठाना पड़ता।* जितने मनुष्य यहां अकाल से मरते हैं, उतने और कहीं नहीं मरते। अन्न का अभाव दिन-दिन बढ़ता चला जाता है। सन् 1865 में यहां चावल रुपये में रागी 28 सेर बिकते थे। इसके चालीस बरस बाद, अर्थात् 1905 में, चावल का भाव रुपये में 13 सेर, गेहूं का साढ़े 14 सेर, चना का साढ़े 16 सेर, बाजरी का साढ़े 18 सेर और रागी का 22 सेर हो गया। गत जुलाई के महीने में भाव इतना तेज हो गया कि चावल रुपये में 8 सेर, गेहूं साढ़े 11 सेर, चना साढ़े 13 सेर, बाजरी 12 सेर और रागी 20 सेर बिकने लगे। अर्थात 42 वर्ष के बीच में मोटे हिसाब से चावल 17 सेर, गेहूं 11 सेर, चना साढ़े 15 सेर, बाजरा साढ़े 11 सेर और रागी 8 सेर महंगे हो गये हैं।

हमारे पाठकजन भाव की इस महंगी को विचार कर अत्यन्त चकित होंगे। तेजी जितनी आश्चर्यजनक है, उतनी ही भयानक भी है। यदि ई हिसाब से भाव बढ़ता गया, तो चालीस बरस बाद रुपये का एक सेर अन्न भी दुर्लभ हो जायेगा! हम लोग चिरकाल ऐसी घोर निद्रा में सोए रहे कि हम लोगों ने न अपने व्यापार के धीरे-धीरे नाश होने पर कुछ विचार किया और न अपने देश के बचे हुए एकमात्र अवलंबन अन्न की बढ़ती हुई दुर्लभता का कुछ ख्याल किया। देश के प्रतिवर्ष बढ़ते अन्न के भाव के साथ अपनी-अपनी उन्नति करते हुए और देशों का भाव देखिए कि वह किस प्रकार प्रतिवर्ष कम हो रहा है। सन् 1857 में इंग्लैंड और वेल्स में गेहूं औसत हिसाब से रुपये में करीब तीन सेर बिकता था और 46 वर्ष बाद सन् 1903 में उसका भाव करीब 6 सेर, अर्थात दूना, हो गया। इसी प्रकार चावल आदि का भाव भी घटा। फ्रांस आदि देशों में भी इंग्लैंड की तरह अन्न का भाव घटता गया।

ऊपर दिये हुए अंकों को देखकर पाठकों को मालूम हो जायेगा कि ज्यों-ज्यों हमारे यहां अन्न का भाव तेज होता जाता है, त्यों-त्यों और देशों में वह घटता जाता है।

इसलिए ज्यों-ज्यों अपने देश के तथा और देशों के लोगों की संख्या के बढ़ने के साथ-साथ अन्न की मांग भी बढ़ती है, त्यों-त्यों अन्न का भाव महंगा होता चला जाता है और सबसे अधिक अन्न इसी देश से जाता है। *यहां चावल-गेहूं इत्यादि खाद्य पदार्थों के सिवा नील, अलसी, सन, कपास इत्यादि की भी खेती होती है। ये भी विदेश को भेजे जाते हैं। और वहां से उनका तैयार माल बनकर यहां आता है। इन वस्तुओं की भी मांग और देशों में बढ़ रही है, किन्तु सन को छोड़कर; क्योंकि उसकी खेती इसी देश में होती है और चीजें विदेशों में उपजती हैं और इसलिए*

उनके दाम या तो स्थिर रहते हैं या घटते चले जाते हैं। सन् 1870 में करीब 10 मन रुई के दाम 248 रुपये 14 आना थे। 1880 में 209, 1890 में 190 रुपये 4 आना, 1900 में 214 रुपये 13 आना और 1905 में 192 रुपये 2 आना थे। इसी प्रकार 1870 में 1 मन अलसी 4 रुपये 10 आना में मिलती थी, 1880 में और 1905 में 4 रुपये साढ़े 10 आना में, 1900 में 6 रुपये साढ़े 9 आना में और 1905 में 4 रुपये सवा 14 आना में।

इन अंकों से जान पड़ता है कि इन पदार्थों के भाव या तो स्थिर रहे या घटे। इन पदार्थों के भाव घटे और खाने के पदार्थों के भाव बढ़े। होना तो यह चाहिए था कि खाद्य पदार्थों की खेती अधिक होती और अन्य पदार्थों की कम, किन्तु हुआ इसका उलटा। इस देश में दो प्रकार के पदार्थों की खेती होती है : एक चावल-गेहूं इत्यादि खाद्य पदार्थों की; और दूसरे रुई, सन, नील इत्यादि की जो कपड़े बुनने-रंगने इत्यादि कामों में आते हैं। खाद्य वस्तुओं की देश-विदेश दोनों में अधिक मांग होने पर भी पहले प्रकार के पदार्थों की खेती बहुत कम बढ़ रही है और दूसरे प्रकार के पदार्थों की शीघ्र ही बढ़ती चली जाती है। दोनों पदार्थों की खेती के लिए कुल 23 करोड़ 80.6 लाख एकड़ भूमि जोती जाती है।

1892-93 में कुल 22 करोड़ 10.2 लाख एकड़ भूमि जोती जाती थी। इसमें 18 करोड़ एकड़ पहले प्रकार के पदार्थों के लिए और 4 करोड़ 10.2 लाख एकड़ दूसरे प्रकार के पदार्थों के लिए। इससे यह परिणाम निकला कि 12 बरस में केवल 1 करोड़ 70.4 लाख एकड़ भूमि अधिक जोती गयी। इसमें से 50.39 लाख एकड़ भूमि पहले प्रकार के पदार्थों के लिए और 1 करोड़ 20 लाख एकड़ दूसरे प्रकार के पदार्थों के लिए। अर्थात 12 वर्ष में जितने एकड़ भूमि अधिक जोती गयी, उसमें दो-तिहाई से भी अधिक दूसरे प्रकार के पदार्थों के लिए जोती गयी और एक-तिहाई से भी कम पहले प्रकार के पदार्थों के लिए।

इस बीच यहां की जनसंख्या 1 करोड़ 50 लाख अधिक बढ़ी। इसलिए अन्न के निमित्त जितनी भूमि अधिक जोती गयी, उससे करीब-करीब दूनी जोती जानी चाहिए थी। सबसे नई रिपोर्ट से मालूम होता है कि अन्न की अपेक्षा सन-अलसी इत्यादि बोने में अधिकता बढ़ती जा रही है। 1892-93 में गेहूं और चावल के लिए 7 करोड़ 80.1 लाख एकड़ भूमि जोती जाती थी और 1906-07 में 4 करोड़ 30.9 लाख। रुई-सन इत्यादि के लिए 1892-93 में 2 करोड़ 70 लाख एकड़ जोती जाती थी और 1906-07 में 4 करोड़ 4 लाख एकड़ जोती गयी।

देश में जनसंख्या के बढ़ने से अन्न की मांग बढ़ती चली जाती है और उसका भाव भी बढ़ता चला जाता है; किन्तु सन को छोड़कर अलसी, रुई, नील इत्यादि का भाव घटता चला जाता है। इस पर भी अलसी-तिल इत्यादि के लिए जितनी अधिक भूमि जोती जाती है, उसकी अपेक्षा अन्न के लिए बहुत ही कम जोती जाती है। इसका कारण यह है विदेशों में इन चीजों की, विशेषकर सन की, बहुत मांग है। अत्यन्त गरीबी के कारण हमारे देश के किसानों को रुपये की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। रैली ब्रादर्स इत्यादि विदेशी कम्पनियों के एजेंट गांव-गांव घूमकर, खेतिहरों को पेशगी रुपया देकर, उनका अन्न मोल ले लेते हैं और उसे विदेशों को भेज देते हैं। इतना ही नहीं वे पेशगी रुपया देकर, जिस चीज की चाहते हैं उसी की खेती करवा लेते हैं। उससे और इस प्रकार के और कारणों से जो भूमि उनके लिए जोती जाती थी, वह सन इत्यादि के लिए जोती जाने लगी है।

विदेशी सौदागरों ने हमारे शिल्प को तो नष्ट प्राय कर ही दिया था, अब खेती के ऊपर भी, जो कि अब हमारे देशवासियों में से अधिकांश का एकमात्र सहारा है, उनका बुरा प्रभाव पड़ रहा है। खेतिहर लोग इस बात को नहीं समझ सकते है, उनका बुरा प्रभाव पड़ रहा है। खेतिहर लोग इस बात को नहीं समझ सकते कि विदेशी कंपनियों के हाथ अन्न इत्यादि बेचने से देश को कितनी हानि पहुंच रही है। यदि वे समझ भी जाएं तो कर ही क्या सकते हैं? उनको लगान और मालगुजारी देने के लिए रुपये की आवश्यकता है। यदि उनके देशवासी रैली ब्रदर्स के समान कोई ऐसा प्रबंध नहीं करेंगे कि समय में उनसे अन्न मोल ले लें, तो उनको विवश होकर विदेशी व्यापारियों के हाथ अपना अन्न बेचना ही पड़ेगा।

प्राणियों के लिए अन्न सबसे आवश्यक वस्तु है। इसलिए इसकी रक्षा करना सब देश हितैषियों का धर्म है। उसे विदेशों को जाने से रोकना बहुत कठिन नहीं है। केवल थोड़े उद्योग की आवश्यकता है। प्रत्येक प्रांत में ऐसी स्वदेशी कंपनियां बननी चाहिए जो कि किसानों को पेशगी रुपया देकर उनका कुल अन्न मोल ले लें और उसको अपने ही देशवासियों के हाथ बेचें। इस प्रकार अन्न विदेशों को जाने से बच जायेगा। सन-अलसी इत्यादि पदार्थ, जो विदेशों को कपड़ा आदि बनने के लिए जाते हैं, उनको यहीं उसी काम में लाने का भी उद्योग होना चाहिए। और विषयों की अपेक्षा इसी विषय में सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। बिना काफी अन्न मिले कुछ काम नहीं हो सकता।

अन्न की महंगी को कम करने का एक उपाय यह है। किन्तु अर्थशास्त्र के जिन सिद्धांतों को हमारे विदेशीय शासक मानते हैं, उनके अनुसार हमारा प्रस्ताव न विवेकयुक्त समझा जायेगा, न साध्य। और हमारे समाज की वर्तमान अवस्था में हम भी यह आशा नहीं कर सकते कि रैली ब्रदर्स के समान कोई व्यवसाय-दल शीघ्र हमारे यहां खड़ा हो जायेगा। *दूसरा उपाय, जो प्रजा को महंगी की मात से बचाने के लिए सम्भव है, वह यह है कि उनकी आमदनी बढ़े। यदि हमारे*

देशवासियों की आय बढ़ जाये और उनके पास इतना धन हो कि अन्न कितना ही महंगा क्यों न हो, वे अपना पेट भरने के लिए काफी अन्न मोल ले सकें, तो लोग अकाल से न मरेंगे; न प्लेग से उतने मरेंगे जितने अब मरते हैं।

जातीय आय बढ़ाने का एक ही उपाय यह है कि शिल्प और खनिज व्यापार की वृद्धि हो। *गवर्नमेंट तथा प्रजा के हितैषी समस्त देशवासियों का यह परम कर्तव्य है कि जहां तक हो सके, शिल्प और वाणिज्य-व्यापार की उन्नति के लिए यत्न करें। एक तीसरा उपाय देशवासियों की आय बढ़ाने का यह है कि अनेक बड़े वेतन के ओहदे, सिविल और सेना-संबंधी, जिनके द्वारा करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष विलायत को चला जाता है, उन पर अंग्रेजों के स्थान में हिन्दुस्तानी नियत हों। एक चौथा उपाय महंगी की विपत्ति को कम करने का यह है कि प्रजा की जो थोड़ी-सी आमदनी है, उसमें से जो भाग गवर्नमेंट टैक्स के द्वारा प्रजा को प्राण बचाने के लिए अपनी परिमित आय का अधिक भाग बच जाया करेगा।*

22 बरस से कांग्रेस इन बातों के लिए गवर्नमेंट से प्रार्थना करती चली आयी है। गवर्नमेंट ने समय-समय पर इनमें से कुछ बातों को करना अपना धर्म भी बताया है—जैसे शिल्पकला की शिक्षा का प्रचार; किन्तु खेद का विषय है कि प्रजा को बार-बार होते हुए अकाल में आहुति बनने से बचाने के लिए जैसे यत्न और उपाय आवश्यक थे, वे अब तक नहीं किये गये और अब भी नहीं किये जा रहे हैं। जब तक ये सब उपाय काम में नहीं लाये जायेंगे, तब तक प्रजा को बार-बार अकाल के भयंकर दुख और प्राणहानि सहनी पड़ेगी। किन्तु ये सब सुधार समय मांगते हैं। इस समय गवर्नमेंट का और प्रजा में सम्पन्न जनों का भी धर्म यह है कि तुरंत करने लायक उपायों से प्रजा को बचायें।

गवर्नमेंट गरीबों को अन्न या धन पहुंचाने का जो यत्न कर रही है और करेगी, वह सब प्रकार से सराहनीय है; किन्तु जैसा हम पहले अपना विश्वास प्रकाश कर चुके हैं, देश के अन्न को बाहर जाने से रोकना प्रजा को महंगी की विपत्ति से बचाने का सबसे प्रबल उपाय है। इस उपाय के अवलंबन करने से जितने अधिक मनुष्यों को सहायता और सहारा पहुंचेगा, उतना और किसी दूसरे उपाय के अवलंबन से नहीं होगा। इस समय सब कामों को छोड़कर अकाल से लोगों को बचाने में सब लोगों को अपना समय और अपना धन लगाना चाहिए।

अन्य राजनैतिक मामलों में एक वर्ष का विलंब भी हो जायेगा तो कुछ बड़ी हानि नहीं; किन्तु इस काम में एक महीने के विलंब से भी सहस्त्रों प्राणियों का नाश हो जायेगा। हम लोगों की सब शक्तियां इसी काम में लगनी चाहिए। *इस कार्य में प्रजा और गवर्नमेंट, सनातन धर्मी और आर्य समाजी, हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और पारसी, सभी को मिलकर काम करना चाहिए। दानशील धार्मिकों को भी ऐसे अवसर पर अपना दान इन्हीं अकाल-पीड़ित और अनाथों को देना चाहिए। प्रत्येक स्त्री और पुरुष अपनी सामर्थ्य के अनुसार इनके प्राण बचाने के लिए अन्न और द्रव्य दें। कितने लोग इस समय न केवल भूख की आग से झुलस रहे हैं अपितु वस्त्र के न होने से शीत से भी ठिठुर रहे हैं। इन भूखों को अन्न और नंगों को वस्त्र देना ईश्वर को प्रसन्न करने का परम उत्तम मार्ग है।* ❑

किताबों की सूचना

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी ने अपने स्थापना काल से अब तक लगभग 1000 शीर्षकों की पुस्तकें छाप चुका है। नवीन पुस्तकों के प्रकाशन के साथ-साथ नियमित रूप से बिकने वाली किताबें छापी जाती हैं। प्रकाशन समिति ने तय किया है कि दशकों पहले छपी कुछ महत्त्वपूर्ण एवं सामयिक किताबों का पुनर्प्रकाशन किया जाय। इसी पृष्ठभूमि में लियो टालस्टॉय द्वारा लिखित 'यह कैसा अंधेर' तथा विनोबाजी के वक्तव्यों का संकलन 'मोहब्बत का पैगाम' का 50 वर्ष के बाद पुनः प्रकाशन किया गया है। **यह कैसा अंधेर** जमीन के मसले पर एक वैचारिक दस्तावेज है तो **मोहब्बत का पैगाम** में विनोबाजी द्वारा कश्मीर यात्रा के दौरान व्यक्त विचारों को समेटा गया है।

सर्वोदय धारा के मनीषी दादा धर्माधिकारी के विचारों का संकलन—समग्र सर्वोदय दर्शन—चार भागों में पुनः प्रकाशित किया गया है। यह एक विचारोत्तेजक ग्रंथावली है। हरेक गांधीवादी, सर्वोदयी, वाहिनी, लोकतांत्रिक तथा प्रगतिशील धारा के प्रतिनिधियों के पास ये ग्रंथ जरूर होने चाहिए।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन आज भी अपनी किताबों का मूल्य न्यूनतम रखने का प्रयास करता है। जहां अन्य प्रकाशन 'प्रति पेज, प्रति रुपया' के हिसाब से मूल्य निर्धारित करते हैं। वहीं सर्व सेवा संघ प्रकाशन का दर काफी कम है। समग्र सर्वोदय दर्शन के चारों सजिल्द संस्करण के पेजों की संख्या 2668 है, परंतु मूल्य मात्र 1500 रुपये है। इसमें खरीददार को 40 प्रतिशत तक की रियायत भी मिलेगी अर्थात डाक सहित आपको मात्र 1 हजार रुपये में चारों खंड घर में पहुंच जाएगी।

* यह कैसा अंधेर	- पृष्ठ-93	मूल्य : 50 रुपये
* मोहब्बत का पैगाम	- पृष्ठ 132	मूल्य : 70 रुपये
* समग्र सर्वोदय दर्शन (खंड 1-4)	- पृष्ठ 2668	मूल्य : 1500 रुपये

–अरविन्द अंजुम, संयोजक

स्वयं को बदलने की आवश्यकता

❑ गांधी

लोकमान्य ने हमें अपना संदेश चार सीधे-सादे शब्दों में दिया था। लेकिन आज भी ऐसे लोग हैं, जिन्हें इस सिद्धांत में शंका है कि स्वराज्य उनका जन्मसिद्ध अधिकार है; उसी प्रकार जिस प्रकार कुछ लोग ईश्वर के अस्तित्व में शंका करते हैं। अतः स्वराज्य आंदोलन हमें इस बात की प्रतीति कराने का आंदोलन है कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। *स्वयं को बदलने की आवश्यकता का स्मरण दिलाने वाली बहुत सी चीजें हमारे पहले ही मौजूद हैं, लेकिन नील की प्रतिमा-संबंधी सत्याग्रह पर, मद्रास विधान परिषद में हुई बहस, मानो हमारी आंख में अंगुली डालकर, हमें इस आवश्यकता की याद दिलाती है।* इस विक्षोभकारी प्रतिमा को हटाने की मांग करने वाला निर्दोष प्रस्ताव भारी बहुमत से अस्वीकार कर दिया गया। *कुछ निर्भीक लोगों को छोड़कर लगभग सभी भारतीय सदस्यों ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध मत दिये। इस प्रस्ताव पर हुई बहस से स्वराज्यवादी मनोवृत्ति तथा अन्य सभी प्रकार की मनोवृत्तियों के बीच के प्रखर अंतर स्पष्ट हो गये। यह मतदान और बहस इस तथ्य का ताजा उदाहरण है कि स्वराज्य में जो विलम्ब हो रहा है, वह अंग्रेज 'शासकों' की हठधर्मिता के कारण उतना नहीं है, जितना कि इस कारण है कि हम अपने दर्जे को पहचानने और उसके लिए काम करने से इनकार करते हैं।* नील की प्रतिमा को हटाने के लिए होने वाला यह आंदोलन, मेरी विनम्र राय में, हमारे लक्ष्य की दिशा में एक कदम है। *मैं नील की प्रतिमा को अपनी गुलामी का प्रतीक मानता हूं, और राष्ट्रीय स्वाभिमान की मांग है कि इसे तथा ऐसे प्रत्येक प्रतीक को हटा दिया जाए। यह आंदोलन इस तथ्य के कारण और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इसका लक्ष्य कोई भौतिक लाभ प्राप्त करना नहीं है। जब करोड़ों भारतीय केवल स्वाभिमान की रक्षा के लिए एक होकर, अपने को बलिदान करने को तैयार हो जायेंगे तो स्वराज्य आसानी से प्राप्त किया जा सकेगा।* यूनियन जैक का अपमान होने पर कोई अंग्रेज व्यक्तिगत तौर पर अपमानित क्यों अनुभव करता है और इस अपमान के विरुद्ध रोष प्रकट करने की कोशिश में वह किसलिए अपनी जान भी दे देगा? यह कोई ऐसी भावना नहीं है, जिसका तिरस्कार किया जाए या जिसे दबाया जाए। अपने झंडे का अपमान होने पर क्रोध व्यक्त करने के लिए वह जो तरीका अपनाता है, वह निःसंदेह अक्सर बर्बर तरीका होता है, लेकिन यदि वह इस भावना को छोड़ दे, तो वह अपनी राष्ट्रीय एकता और जिस राष्ट्र का वह सदस्य है, उस राष्ट्र के लिए अपने-आपको उत्सर्ग कर देने की शक्ति खो बैठेगा। इसी प्रकार यदि हमें अपने जन्मसिद्ध अधिकार की प्रतीति होती तो हमारे लिए यह जानना गर्व की बात होती कि ऐसे भी नवयुवक हैं, जिन्हें हमारे बीच एक ऐसी प्रतिमा के होने पर एतराज है, जिसका होना राष्ट्र के लिए अपमानजनक है। बहस में भाग लेनेवाले कई भारतीय सदस्यों ने ऐसी प्रतीति या गर्व का कोई परिचय नहीं दिया। उनके लिए राष्ट्र की लड़ाई लड़ने वाले ये नौजवान अज्ञानी व्यक्ति हैं, जिनका आचरण केवल निन्दा के योग्य ही है। उन्हें (नील की) प्रतिमा के एक ऐसे प्रमुख सार्वजनिक स्थल पर मौजूद रहने में कोई बुराई नहीं नजर आती, जहां केवल उन राष्ट्रीय नायकों की प्रतिमाएं होनी चाहिए, जिनका जीवन राष्ट्र को अनुप्रेरित करेगा और उदात्त बनायेगा।

यह बात बहुत स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है कि यह सत्याग्रह व्यक्तिगत रूप से जनरल नील के विरुद्ध नहीं है। 'आतंक' के साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से यदि जनरल नील की जगह जनरल वीरसिंह की प्रतिमा खड़ी हो गयी होती तो भी यह सत्याग्रह उतना ही उचित और आवश्यक होता।

बहस के दौरान यूरोपीयनों की ओर से प्रतिमा का एक बचाव पेश किया गया था। उसे काफी सावधानी के साथ, संयत और युक्तियुक्त शब्दों में रखा गया था। तथापि उससे यूरोपीय मनोवृत्ति झलकती थी। *जनरल नील जिस चीज के प्रतीक थे, वह साम्राज्य को बचाने के लिए आवश्यक थी। और जनरल नील के दुष्कृत्यों को ढंकने के लिए उनका बचाव करने वाले के लिए यह जरूरी हो गया कि वह 'द अदर साइड ऑफ द मेडल' ('तसवीर का दूसरा पहलू') के लेखक श्री टॉमसन को पागल करार दे दें और एक घिनौना अभिनंदन पत्र कहीं से खोज निकालें, जिसे गदर के दो वर्ष बाद, मद्रास के 110 हिन्दुओं ने, जनरल नील की रेजीमेंट को प्रदान किया था। जिन*

परिस्थितियों में यह अभिनंदन पत्र दिया गया था, उनका पता चलाने का मेरे पास कोई तरीका नहीं है, लेकिन मुझे इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं लगती कि ऐसा एक अभिनंदन पत्र भेंट किया गया; क्योंकि हाल की घटनाओं में से भी ऐसे दृष्टांत दिये जा सकते हैं। क्या जनरल डायर को स्वयं अमृतसर में ही इसी प्रकार का एक अभिनंदन पत्र नहीं भेंट किया गया था? और यह आश्चर्य की बात होगी कि यदि आज भी सर माइकेल ओ डायर भारत लौटें और अच्छे शासन के हित में जरूरी समझा जाए तो उन्हें एक अभिनंदन पत्र भेंट करने के लिए 110 भारतीय न मिलें। क्या हमारे ही समय में अत्यन्त अलोकप्रिय वाइसरायों को भी अभिनंदन पत्र और ट्रायिां नहीं प्राप्त हुई हैं?

यह बड़े ही दुःख की बात है कि अंग्रेज लोग भारतीयों की उन भावनाओं की सराहना करने लगे हैं, जिन्हें यदि कोई अंग्रेज व्यक्त करें तो वे स्वयं शर्मिन्दा होंगे। *मुझे याद है कि एक सम्मेलन में राजभक्ति से संबंधित एक प्रस्ताव पर बोलते हुए एक विद्वान भारतीय ने यह कहा कि वे प्रत्येक अंग्रेज को अपना शिक्षक मानते हैं और वे जो-कुछ हैं, सब ब्रिटेन की दया से ही बने हैं, तो एक गवर्नर की पत्नी ने सबसे पहले जोर से तालियां बजायी थीं। मद्रास में जो-कुछ हुआ, वह कुछ इसी ढंग की चीज थी और इससे मुझे दुःख हुआ।*

लेकिन मद्रास विधान परिषद में जो विपरीत फैसला हुआ, उससे आतंकवाद के प्रतीकों के विरुद्ध, संघर्ष करने वाले नवयुवकों को, निरूत्साह नहीं होना चाहिए। उन्हें आंदोलन का इस समय विरोध करने वाले अंग्रेजों या भारतीयों के विरुद्ध क्रोध नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने-आप में और अपने उद्देश्य में विश्वास होना चाहिए। यदि उनका यह विश्वास बना रहा तो वे एक दिन उन्हीं लोगों को अपनी ओर कर लेंगे। ❑

दस्तावेज : 23 दिसंबर : किसान दिवस

किसान आंदोलन

❑ **रामवृक्ष 'बेनीपुरी'**

जब मैं *योगी* में आया, बिहार में किसान आंदोलन की धूम मची थी। मैं भी उसमें शामिल हुआ।

बिहार की भूमि उर्वरा है। यहां के किसान सदा खुशहाल रहे। किन्तु इन खुशहाल किसानों पर कार्नवालिस ने जमींदारी का जुआ रखकर उन्हें दुर्गत की गाड़ी में जोत दिया। जो कभी जमीन के मालिक थे, वे अर्द्धदास बन गये।

जब नील की खेती शुरू हुई, किसानों की दुर्गत और बढ़ी। अंग्रेज कोठीवाले आये और बिहार के—खासकर उत्तर बिहार के—कोने-कोने में छा गये। बड़े पैमाने पर ये खेती करते, किसानों से जमीन लेते, बेगार लेते, क्या-क्या नहीं लेते।

इन्हीं नील के कोठीवालों से लड़ने को गांधीजी चम्पारण में आये थे। गांधीजी की जीत हुई; कोठी वालों का रोब और दबदबा चूर हुआ।

विदेशी कोठीवाले तो चले गये; किन्तु देशी जमींदारों के जुल्म तो बरकारार ही रहे। इस देश की सबसे बड़ी जमींदारी बिहार में थी, जिसकी सम्पत्ति करोड़ों में कूती जाती थी। लखपति जमींदार तो पग-पग पर मिलते थे। समूचे बिहार में महाराजों, राजों; बाबुओं की भरमार थी। कहीं बाबू शब्द किरानी के लिए प्रयोग होता है, बिहार में तो वह बड़े ही सम्मान का शब्द रहा है। यहां के बड़े-से-बड़े नेता आज तक अपने को 'बाबू' कहे जाने में ही गर्व अनुभव करते हैं।

इन जमींदारों के जुल्म के खिलाफ भी आवाज उठने लगी। मुझे याद है, जब मैं स्कूल में पढ़ता था, एक वकील थे, बाबू अरिक्षण सिंह। वे किसानों की सभाएं करते थे, किसानों के पक्ष में बोलते थे। जब भारत में राजकीय कृषि कमीशन आया था, उसके सामने उन्होंने किसानों की ओर से गवाही दी थी और जब पं. मोतीलालजी ने एक सर्वदल सम्मेलन बुलाया था, इन्हें भी किसानों के प्रतिनिधित्व की हैसियत से निमंत्रित किया था।

किन्तु जमींदारों में बड़ी खलबली मची, एक स्वामी विद्यानन्द के चलते। अचानक दरभंगा जिले में पुच्छलतारा की तरह वह आ गिरे और थोड़े दिनों तक ऐसी धमाचौकड़ी मचायी कि बिहार के सबसे बड़े जमींदार का भी आसन डगमगाने लगा।

स्वामी विद्यानन्द ने एक पत्र निकाला—*किसान समाचार।* उसी समय *किसान मित्र* निकला, जिसके सम्पादकीय विभाग में मैंने कुछ दिनों तक काम किया था।

जब मांटेगू-चेम्सफोर्ड-सुधार के अनुसार चुनाव का सिलसिला शुरू हुआ, किसानों के नाम पर वोट मांगना सुलभ समझ कुछ लोगों ने अपने को किसानों का नेता घोषित किया। बिहार की विधायिका सभा में किसानों का एक छोटा-सा दल कायम हुआ।

फिर कांग्रेस नेताओं का ध्यान इस ओर गया। सोनपुर मेले में एक सभा बुलायी गयी, स्वामी सहजानन्दजी को वहां आमंत्रित किया गया और उन्हीं को सभापति बनाकर एक प्रांतीय किसान सभा गठित की गयी। उस किसान सभा के प्रधानमंत्री बनाये गये थे बाबू श्रीकृष्ण सिंहजी, जो आज बिहार के चीफ मिनिस्टर हैं।

संयोग से मैं उस सभा में पहुंच गया था। मैंने उसका विरोध किया था। मुझे यह सारा कुछ मायाजाल लगता था।

किन्तु 1930 और 32 के जेल में जो देखा-सुना और जो पढ़ा-लिखा, मैंने अनुभव किया, गरीबों के राज्य की स्थापना की बात तो दूर रखिये, हम अंग्रेजी राज्य को भी तब तक दूर नहीं भगा सकते, जब तक इस

आंदोलन में किसान नहीं आते। और किसानों को इसमें लाना है, तो उनका अलग संगठन करना ही पड़ेगा। सिंह और बछड़े को कोई एक घाट पर पानी पिला भी ले, किन्तु दोनों को एक जुए में बांधकर खेत तो जोता नहीं जा सकता।

जेल में ही कुछ सरकारी रिपोर्टें पढ़ीं और उनसे पाया कि बिहार की उन्नति तब तक तो हो नहीं सकती, जब तक जमींदारी-प्रथा उठा नहीं दी जाती।

अतः 1933 में एक साल की सजा काट कर जब मैं लौटा, मैंने जमींदारों के खिलाफ लेख लिखना शुरू किया। *प्रताप* में मेरा लेख ''जमींदारी क्यों उठा दी जाये?'' निकला, जो कई पत्रों में उद्धृत हुआ। *विश्वामित्र* में भी कई लेख इस विषय पर मैंने लिखे। 'बिहार के किसान' शीर्षक से एक बड़ा-सा खोजपूर्ण लेख लिखा, जिसे पं. बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने *विशाल भारत* में प्रथम लेख के रूप में छापा था।

जब *लोकसंग्रह* में काम करने लगा, स्वामी सहजानन्दजी से घनिष्ठता बढ़ी। स्वामीजी अद्‌भुत तेजस्वी पुरुष थे। चाहे जिस उद्देश्य से कांग्रेस नेताओं ने उन्हें सभापति बनाया हो, जब किसानों के काम को उन्होंने अपने हाथ में लिया, तो जी-जान से उसमें पड़ गये। इतिहास से इस तथ्य को दूर नहीं किया जा सकता कि बिहार में किसान आंदोलन की यथार्थ नींव स्वामी सहजानंदजी ने ही डाली थी।

किन्तु दुर्भाग्य कि शुरू में ही स्वामीजी से मेरा मतभेद प्रगट हुआ। जब मुजफ्फरपुर के जिला किसान सम्मेलन में मैंने जमींदारी उठाने का प्रस्ताव रखा, स्वामीजी मुझ पर नाराज हो गये। उनकी धारणा थी कि अभी ऐसा प्रस्ताव नहीं आना चाहिए। किन्तु जब उनकी तटस्थता के बावजूद यह प्रस्ताव मैंने सम्मेलन में रखा, वह विशाल बहुमत से पास हो गया।

किसान सभाओं में जमींदारी प्रथा के खिलाफ बोलना, जमींदारी प्रथा उठा देने का प्रस्ताव रखना और पास कराना—यह मेरा पेशा ही हो गया। पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी लिखता रहा। *योगी* को किसान आंदोलन का मुखपत्र-सा बना दिया। अंत में बिहार प्रांतीय किसान सभा ने जमींदारी उठाने का प्रस्ताव स्वीकार किया। जब मैं फैजपुर कांग्रेस का प्रतिनिधि था, वहां भी मैंने यह प्रस्ताव रखा। मुझे याद है, इस प्रस्ताव पर पं. जवाहरलाल नेहरू किस प्रकार बिगड़ उठे थे—उसे कबल अज़वक्त कहकर टाल दिया था।

उन्हीं दिनों की एक मनोरंजक बात है। मेरे एक जमींदार मित्र ने मुझसे कहा—यह क्या करते फिरते हैं आप; क्या आप लोगों के कहने से जमींदारी प्रथा उठ जायेगी? मैंने कहा—बारह वर्ष में उठकर रहेगी। उन्होंने कहा, आप दस्तखत कर सकते हैं? मैंने उनकी डायरी में लिखकर दस्तखत कर दिया। जब 1946 के बाद कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने ही ऐसा विधान पास कर दिया, तो उन्होंने मुझे वह दस्तखत दिखलाया और कहा—आप जीत गये, मैं हार गया।

मैं कई जिला किसान सम्मेलनों का सभापति बनाया गया, फिर प्रांतीय किसान सभा का सभापति चुना गया; अखिल भारतीय किसान सभा के उपसभापति का पद भी मुझे दिया गया। इन जिम्मेदारियों को मैंने बड़े उत्साह और स्नेह से वहन किया।

1934 के भूकम्प के बाद किसान आंदोलन में बड़ी प्रगति हुई थी। स्वामीजी ने हम समाजवादियों को काम करने की पूरी स्वतंत्रता और सुविधा दी थी।साथी जयप्रकाश नारायण प्रांतीय किसान सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये थे।

हम लोगों के सम्मिलित प्रभाव से फैजपुर कांग्रेस ने एक किसानों का कार्यक्रम शुरू किया था। उसी कार्यक्रम के आधार पर 1937 में किसानों ने कांग्रेस को इतनी मदद दी कि सात प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बन पाया। कांग्रेसी मंत्रिमंडल के बाद किसान आंदोलन में और भी तीव्रता आयी। पटना में हम लोगों ने किसानों की वैसी रैली की जैसी फिर कभी देखी नहीं गयी। बिहार के कोने-कोने से किसान पैदल आये थे। पटना का सारा लौन जो उस दिन भरा, फिर कभी भर नहीं पाया।

किन्तु किसानों की इस बड़ी भीड़ को देखकर जैसे कांग्रेस-नेता भयभीत हो गये। उन्होंने जमींदारों से एक समझौता कर लिया और किसान सभा को अपना कोपभाजन बना लिया। धीरे-धीरे कटुता बढ़ती गयी।

फिर किसान सभा में भी फूट फैली और उसकी वह शक्ति जो गयी, आज तक नहीं लौटी। उस दुखद प्रसंग के बारे में अधिक लिखना आपसी कटुता बढ़ाना है।

इस प्रसंग में एक बड़ी ही मधुर स्मृति है। एक बार जयप्रकाशजी और मैं स्वर्गीय सर गणेशदत्त सिंह से मिलने गया था। सर गणेश ऐसा त्यागी सपूत बिहार ने दूसरा नहीं पैदा किया, ऐसा बिना हिचक के कहा जा सकता है। जब तक वह मिनिस्टिर रहे; अपने मामूली खर्चे के अतिरिक्त उन्होंने एक-एक पैसा दान में दे दिया। उनके दिये कई लाख रुपये से विश्वविद्यालय उपकृत हुआ है। उनके द्वारा स्थापित छात्रवृत्तियों ने कितने ही विद्यार्थियों के लिए सर्वोच्च शिक्षा का द्वार आज तक खोल रखा है। एक-एक पैसा उन्होंने दिया—यह शब्दशः सही है। यह सर्वप्रगट है कि अपनी पौत्री के विवाह में एक बार उन्होंने अपने बेटे को कुछ रुपये दिये, तो हैंडनोट करा लिया और उसके पैसे वसूल कर विश्वविद्यालय को दिया।

सर गणेश कुछ और भी अद्‌भुत काम किया करते थे। जब जयप्रकाशजी 1937 में जेल में थे, उनके पूज्य पिताजी बहुत बीमार पड़े। सर गणेश ने जयप्रकाश को समय से पहले छोड़ दिये जाने के लिए चुपचाप चेष्टा की थी और वह सफल हुए थे।

जब महायुद्ध शुरू हुआ, जयप्रकाशजी ने कहा, चलिये, उस वृद्ध-वशिष्ठ से हम मिल आयें; न जाने फिर सुअवसर मिले या

नहीं। संयोग देखिये, मैं बीस वर्षों से पटना में था, किन्तु कभी उनसे मिला नहीं था। मुझे लोगों ने कह रखा था; वह जात-पात के पक्षपाती हैं, भूमिहारों का पक्ष लेते हैं। मैं भूमिहार था, अतः निश्चय कर लिया था, कभी उनसे मिलूंगा ही नहीं।

किन्तु जयप्रकाशजी के साथ जाने में क्या उज्र हो सकता था? अब सर गणेश राजनीति से पृथक थे और एक तपस्वी का जीवन बिना रहे थे। अतः हम उनकी सेवा में पहुंचे। जब मेरा परिचय उन्हें दिया गया, उन्होंने अपनी स्वाभाविक मगही बोली में कहा—तुम वही बेनीपुरी हो, जो कहता है, जमींदारी प्रथा उठा दी जाय। मैंने अपराध स्वीकार किया। वह मुस्कराकर बोले—मैंने सोच रखा था, तुम देखने में बड़े भयानक होगे; किन्तु तुम्हें तो उसके विपरीत पा रहा हूं। फिर बड़ी गंभीरता से बोले—देखो, मैं पचीस वर्षों तक बिहार जमींदार सभा में रहा हूं और कोशिश की कि जमींदार सुधर जायें। किन्तु वे अपने को सुधार नहीं सके। जो सुधर नहीं सकेगा, उसका अंत तो होगा ही।

कुछ देर तक हम उनका मुंह देखते रहे। फिर उन्होंने जयप्रकाशजी से बताया कि किस प्रकार एक आयरिश मित्र के आग्रह पर, जब वह कलकत्ता में थे, एक सोशलिस्ट क्लब के मेम्बर बने थे। ''बिहार का मैं पहला सोशलिस्ट हूं।''—उन्होंने मुस्कराकर कहा।

अब जयप्रकाशजी की बारी थी। उन्होंने तुरत पेश किया—तो हमारी मदद कीजिये कि यह बुरी प्रथा (जमींदारी) तुरत नाश हो जाय। सर गणेश फिर मुस्कराये, बोले—नहीं, मेरी स्थिति भीष्म की तरह है। विजय का आशीर्वाद तुम्हें दूंगा और लड़ूंगा उनकी ओर से, यद्यपि अब मेरी स्थिति उसके योग्य भी नहीं रह गयी। उनके चेहरे पर करुणा छा गयी।

तो क्या मैं समझूं, जमींदारी प्रथा उठ जाने से, अपने आशीवार्वद की सार्थकता पर, उस वृद्धवशिष्ठ की आत्मा स्वर्ग में आनन्दित हुई होगी? (साभार 'मुझे याद है', सं. महेन्द्र बेनीपुरी)

बेनीपुरी स्मरण : 23 दिसंबर-जयंती

बेनीपुरी और जेपी एक-दूसरे के हृदय में बसते थे

❑ **अशोक मोती**

यह है महिला चरखा समिति जेपी की पत्नी प्रभावती जी द्वारा स्थापित संस्थान। इसी परिसर के एक कोने में अत्यंत साधारण-सा दो मंजिला मकान है जिसमें नीचे जेपी का सचिवालय और ऊपर है उनका निवास।

एक गलियारे के साथ सिर्फ एक कमरे में है जेपी का यह कार्यालय। कमरे में दो टेबुल लगी हुई हैं, एक जेपी के सचिव सच्चिदानंद की और दूसरी उनके बगल में लगी टेबुल मेरी यानी उनके सहायक की। सामने एक छोटी-सी टेबुल पर एक टाइप राइटर रखा है। टाइपिस्ट भाई काली ठाकुरजी यहां बैठते हैं।

आगंतुकों को कोई कष्ट न हो इसलिए चार-पांच कुर्सियां कमरे में हमारे सामने रखी गयी हैं। बाहर के गलियारे में एक बेंच भी पड़ी है। गलियारे के बाहर खुला बड़ा मैदान है जो यूं तो समिति के बच्चों का खेल का मैदान है किन्तु इन दिनों आगंतुकों से ही अकसर भरा रहता है। कभी-कभी हम यहां छोटे-मोटे कार्यक्रम भी कर लेते हैं।

हालांकि ये जेपी का निजी आवास नहीं है फिर भी लोग इसे जेपी निवास के नाम से ही जानते हैं। हद तो ये है कि लिफाफे या पोस्टकार्ड पर महज जेपी लिखा होने पर भी पत्र-पत्रिकाएं यहां एकदम पहुंच जाती हैं। देश क्या विदेश की भी। यहां आने वाले हर व्यक्ति के लिए यह उनका बेहद प्यारा घर है।

लिखते-लिखते एक बेहद रोचक तथ्य मुझे याद आ गया और मेरे जेहन में मुस्कान फैल गयी। वह यह कि कई पत्रों में जेपी के नाम के आगे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री भी पते में लिखे होते हैं। पत्रों के पढ़ने से पता चलता है कि देश-दुनिया और सभी व्यक्तिगत समस्याओं का भी समाधान सिर्फ जेपी के पास है। लोगों में ऐसा ही विश्वास देखता हूं।

चलिए, आपको अब यह भी बता दूं कि जेपी कहां रहते हैं। ऊपर की मंजिल पर मात्र दो कमरे हैं। एक जेपी की लाइब्रेरी और एक शयन कक्ष। गुर्दे की बीमारी के बाद इसी शयन कक्ष में एक डायलिसिस की मशीन भी लगा दी गयी है, जिससे कि एक दिन बीच कर उनके खून की सफाई इस मशीन से की जा सके।

31 अक्टूबर, 1978

जेपी प्रसन्न हैं कि आज उन्हें डायलिसिस की कष्टदायक प्रक्रिया से नहीं गुजरना पड़ा। ये कल होगी। अस्तु आज उनकी दिनचर्या थोड़ी स्लो है। रिलैक्स्ड हैं। यह जानकारी गुलाब ने मुस्कराते हुए दी। जेपी के प्रिय सेवक भाई गुलाब ने यह भी बताया कि आज सबेरे जेपी की उनके मित्र समाजवादी व साहित्यकार व पूर्व सांसद गंगाशरण सिंह, जिन्हें हम सब गंगा बाबू कहते हैं, से जम कर बातें हुईं। लौटते हुए गंगा बाबू कार्यालय में भी बैठकर गये थे। मेरी टेबुल पर रखी समाजवादी आंदोलन की

पत्रिका *जनता,* जिसका प्रकाशन कई वर्षों बाद फिर प्रारंभ हुआ है, में प्रकाशित मेरा आलेख 'राजनीतिक सड़न बनाम युवा नेतृत्व' पूरा पढ़ डाला। फिर मेरी तरफ मुखातिब होते हुए कहा—'अच्छा है।' फिर मुस्कराया और बोले—'चलिए अब तो हम लोग बूढ़े हुए। स्वराज और समाजवाद के लिए जितना कर सकता था अपने को खपाया। अब यदि 'राजनीतिक सड़न' पैदा हुई है तो 'युवा नेतृत्व' को तो उभरना ही चाहिए। कौन रोकता है?'

पत्रिका पर नजर गड़ाए बोले—'इस *जनता* का इतिहास जानते हैं। इसका पहला अंक 1937 की विजयदशमी (जेपी के जन्मदिन) को निकला था। जेपी और बेनीपुरी जी इसके लिए कलकत्ता गये थे। पैसों का किसी तरह जुगाड़ किया था।' वहां से टाइप और कागज लेकर पटना आये थे। छपाई यहीं पटना में हुइ थी।' उनकी बातें, हम जितने भी लोग वहां थे खींचे जा रही थीं। हमारी दिलचस्पी देख उन्होंने आगे बताया कि 'पहले अंक की पहली खेप में दो हजार और फिर तीन हजार प्रतियां छपवानी पड़ी थीं। बेनीपुरी जी संपादक थे और जेपी के सिर दूसरी आर्थिक आवश्यकता जैसे भी हो पूरी करने की जिम्मेदारी। *जनता* का बड़ा असर था। यहां तक कि नेपाल की सीमा के स्टेशनों पर पत्रिका की बिक्री बहुत थी। नेपाल के युवा चोरी-छिपे खरीद कर ले जाते थे क्योंकि बेनीपुरी राणाशाही के खिलाफ एक लेखमाला लिख रहे थे। पत्रिका काठमांडू तक पहुंच गयी थी। बाद में सूचना मिली थी कि दो-तीन युवकों, जिनके पास से यह पत्रिका बरामद हुई थी, को गोली से उड़ा दिया गया था।' एक लंबी सांस ली और *जनता* की इस प्रति को उलटते-पलटते बोले, 'इसका पुनः प्रकाशन शुरू हुआ है...सुना है, भाई रामानंद तिवारी जी रुचि ले रहे हैं और आप लोगों का भी सहयोग मिल रहा है। अच्छा है।' अपनी कुर्सी से छड़ी के सहारे उठते हुए जैसे कुछ विशेष बात याद में आयी हो, बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहा—'तब *जनता* का कार्यालय, जो जेपी की ही देन थी, राजबंदियों के लिए किसी तीर्थ से कम नहीं था। सुभाषचंद बोस भी वहां आये थे।'

इतना कह गंगा बाबू जा चुके थे।

इसी दिन तकरीबन 3 बजे दो बुजुर्ग कार्यालय में आये। कहा नेपाल से आये हैं। जेपी के मित्र हैं। दोनों सच्चिदानंद से मुखातिब हैं। वे बताते हैं कि जेपी से मिलने ही पटना आये हैं। परिचय से पता चला नेपाल के कोईलाड़ी जिला-सप्तरी के रहने वाले हैं चतुरानन सिंह तथा कुनौली के निकट नियौर गांव के हैं अवध नारायण सिंह। नेपाल-भारत सीमा क्षेत्र के राघोपुर विधानसभा क्षेत्र जिला सुपौल में है कुनौली।

मैं सच्चिदानंद के चेहरे के भावों से भलीभांति परिचित था, अभी वे पसोपेश में थे। क्या किया जाए। मना भी नहीं किया जा सकता है और मिलने भी नहीं दिया जा सकता। जेपी के कमजोर स्वास्थ्य का हवाला तो वे पहले ही दे चुके थे। फिर उन्हें कुछ आश्वस्त करते हुए मुझे स्थिति की सही जानकारी लेने ऊपर भेजा। जेपी अभी तक सो रहे थे। शायद गंगा बाबू से बातें कर वे खुद को बहुत हलका महसूस कर रहे होंगे इसलिए लंबी नींद ले रहे हैं। जेपी को रात में नींद की कमी रहा करती थी इसलिए जेपी जब दिन में लंबी नींद लेते थे तो यह हमारे लिए बेहद खुशी की बात होती थी। नीचे जाकर सच्चिदानंद को बता दिया कि वे अब तक सो ही रहे हैं। कुछ समय इंतजार कर आगंतुक को क्षमा के साथ कल सबेरे डायलिसिस से पहले आ जाने का आग्रह किया। वे दोनों खुशीपूर्वक आज बिना मिले लौट गये। सच्चिदानंद को दुख था कि जेपी से बिना मिले उन्हें लौटना पड़ा।

बाद में सच्चिदानंद ने बताया कि सन् 1942 के अगस्त क्रांति के दौरान जेपी इन्हीं चतुरानन बाबू के घर मास्टर जी के रूप में महीनों रहे थे। नेपाल में राणाशासन के दौरान ऐसा करना बहुत ही हिम्मत की बात थी।

दरअसल, उस समय जिस तरह जर्मनी ने जिन यूरोपीय देशों पर कब्जा किया था और उन देशों में छापेमार दस्ता-गुरिल्ला बैंड को जिस तर्ज पर संचालित किया गया था उसी तर्ज पर जेपी ने भी 'आजाद-दस्ता' नाम से एक छापामार संगठन खड़ा किया था तथा उसका प्रशिक्षण शिविर नेपाल की सीमा में आयोजित किया गया था। इसी दौरान जेपी और लोहिया दोनों को नेपाल पुलिस ने गिरफ्तार कर हनुमान नगर फांडी यानी थाना में बंद कर दिया था। किन्तु उसी रात 'आजाद-दस्ता' के लोगों ने फांडी पर हमला बोल कर उन्हें बाहर निकाल लिया था। चतुरानन बाबू, अवध नारायण बाबू, सूरज सब उसी आजाद-दस्ते के सेनानी रहे हैं।

शाम के पांच बजे गुलाब ने आकर सूचना दी कि जेपी जाग चुके हैं। हालांकि जेपी के मित्र तो जा चुके हैं, किन्तु जेपी को यह बताना जरूरी था। सच्चिदानंद ने मुझ पर ही जेपी को बताने का भार डाल दिया है। ऊपर जाता हूं। जेपी बरामदे में कुर्सी पर बैठ चुके हैं। मैंने बताया कि आपके दो बड़े पुराने मित्र चतुरानन बाबू नेपाल से अपने एक और साथी के साथ आपसे मिलने आये थे। आप सोए थे इसलिए लौट गये हैं। चतुरानन बाबू का नाम सुनते ही जेपी बड़े हर्षित हो उठे और मुझसे कहा—'अरे भाई तो मुझे जगा क्यों नहीं दिया। आज ही न मिल लेते। निस्संदेह जेपी की ऐसी सहजता और निश्छलता ही लोगों को उनका दीवाना बना देती थी। साथियों से मिलने की उत्सुकता मत पूछिये। जेपी को बता दिया है कि उन्हें कल सबेरे आपकी डायलिसिस होने से पहले बुला लिया है। आज जेपी सबेरे से काफी प्रसन्न हैं तो हम सब भी काफी प्रसन्न हैं।

1 नवंबर, 1978

आज अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ जल्दी ही कार्यालय आ गया हूं। सच्चिदानंद ने भी जल्दी आने को कहा था। आज जेपी की डायलिसिस है और उसके पहले उन्हें उनके प्रिय मित्रों से मिलना ही है। किन्तु अभी तक उनके मित्र यहां पहुंचे नहीं हैं सोचा तब तक जाकर जेपी को देख लूं कि वे तैयार हुए या अभी कितना समय है उनके तैयार होने में। कमरे से निकलते ही सच्चिदा बाबू आ गये। मैं ऊपर चला गया। देखा, जेपी तो पूरी तरह तैयार हैं और वे वहां कुर्सी पर भी बैठ चुके हैं जिस पर लोगों से मिलने के समय बैठा करते हैं। मेरे प्रणाम करते ही पूछ बैठे—'चतुरानन बाबू को अभी बुलाया है न!' मेरी हामी भरने के बाद पूछा—'क्या तुम्हें पता है कि वे लोग ठहरे कहां हैं?' मैंने अंदाजन चतुरानन बाबू के भतीजे अधिवक्ता रामराजा सिंह की बात कही। जेपी ने यूं सिर हिलाया जैसे उन्हें भी पता हो। सोचता रहा जेपी अपने मित्रों का कितना खयाल रखते हैं। हो सकता है, उन्हें चतुरानन बाबू के भतीजे रामराजा प्र. सिंह, मार्क्सवादी नेता, सांसद व नेपाल के उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता, जो उन दिनों निर्वासित जीवन गुजारते हुए पटना में ही रहे थे, के बारे में किसी ने जानकारी दी हो। जेपी से बात खत्म हो चुकी थी। मैं नीचे उतरा। सीढ़ियों पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष सिद्धराज ढड्ढा से मुलाकात हुई। वे ऊपर ही आ रहे थे।

नीचे कार्यालय में दोनों सज्जन पहुंच चुके थे। मैंने सच्चिदानंद को सिद्धराज जी के पहुंचने और जेपी के पास जाने की भी जानकारी दी। फिर जेपी के पास उनके मित्रों को लेकर हम चले। आगे चतुरानन बाबू सच्चिदानंद और पीछे हम। चतुरानन बाबू को देखते ही जेपी कुर्सी से उठने का उपक्रम करते दिखे। चतुरानन बाबू ने हाथ जोड़ प्रणाम करते कहा—'नहीं जेपी, आप न उठिए, और उनके सामने कुर्सी पर बैठ गये। हम सब पीछे बैठ गये। सिद्धराज ढड्ढा जी जेपी के पास पहले से ही बैठे हुए थे।

कुशल-क्षेम पूछने में भी जेपी ही आगे रहे। चतुरानन बाबू जैसे वर्षों की बातें कुछ ही पलों में कर लेने को उत्सुक थे। उन्होंने बताया कि कैसे लोग घर-घर में उन्हें याद करते हैं, नई पीढ़ी को बड़े गर्व से बताते हैं। उनकी 'वानर-सेना' यानी 'आजाद-दस्ता' के साथी कितनी बातें उनके साथ गुजारे वाकयातों को कह-सुन कर गुजारते रहे हैं। उन सबके लिए तो जेपी 'राम' हैं, जिन्होंनें लंका के क्रूर राजा रावण सदृश ब्रिटिश राज से वनवासी होते हुए भी अन्याय के खिलाफ लोहा लिया। 'आजाद-दस्ता' का गठन और जेपी की पहल से ज्यादा गौरवशाली और कोई घटना नहीं है उनके इलाके के लिए। जेपी के उस इलाके में आगमन और देश उद्धार के कार्यों के बारे में जितनी चर्चाएं वहां होती हैं, उसका आधार बेनीपुरी जी द्वारा लिखी *जयप्रकाश* पुस्तक ही है। जिन्होंने आपकी श्रेष्ठता को लिपिबद्ध इतने रोचक ढंग से किया है कि वह हमारी प्रेरणा स्रोत बन गयी है। बेनीपुरी रचित *जयप्रकाश* तो हमारे लिए *रामायण* से कम नहीं है।

चतुरानन बाबू की बातें बांध तोड़कर बहते झरने की भांति चलती ही जा रही थीं। जेपी मुस्करा रहे थे।

राघोपुर की चर्चा भी कर डाली उन्होंने राघोपुर के नाम से जेपी ज्यादा सचेत होते कुर्सी पर सीधे बैठ गये। चतुरानन बाबू कह रहे थे—संपूर्ण क्रांति'74 आंदोलन में भी आपने कोसी के उस इलाके को कम गौरवान्वित नहीं किया। '74 आंदोलन से पहले राघोपुर (जेपी आंदोलन में लेखक का कार्य क्षेत्र और जन्मस्थान) में ही आपने क्षितिज में निकट भविष्य में संभावित क्रांति देखने की बात कही थी। आजाद दस्ता का वह शिविर राघोपुर से 10 किमी से अधिक दूर नहीं है। नेपाल से पलायन करने के समय इसी राघोपुर में ही आपने मूड़ही और घूघनी का नाश्ता किया था—कहते वे रुक जाते हैं। बड़े दुःख के साथ कहते हैं—जेपी आपके साथ जो आजाद भारत में हुआ उससे हम बहुत दुखी हैं। आपके स्वास्थ्य के बारे में जानकर मन इतना बेचैन हुआ कि हमसे रहा नहीं गया और आपसे मिलने आ गये।

स्वास्थ्य की बात सुनते जेपी भी दुखी हो जाते हैं और उनके शब्द भी थोड़े कमजोर पड़ने लगते हैं—कहते हैं, 'अब तो किडनी का रोगी हो गया हूं और डायलिसिस की मशीन पर ही आश्रित है जीवन। बस काट रहा हूं।'

फिर जेपी ने न जाने कितने ही गांव की चर्चा की और कोईलाड़ी, कट्टी, मधेपुरा, बरसैन, ढाढ़ा-छतौनी, वसावनपट्टी, नियौर और वहां के रहने वालों के लिए पूछा। चतुरानन बाबू सबका हाल बताते रहे, कौन जीवित है और कौन अब नहीं रहे...सबकुछ।

भरे गले से जेपी ने उस इलाके के लोगों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जिन्होंने 'आजाद-दस्ता' के कार्य में अपने प्राण की भी बाजी लगा दी। तन, मन, धन से हमारा साथ दिया। जेपी ने यह भी बताया कि 'सूरज बाबू के सुझाव पर ही हम उस इलाके में गये थे कि उनके बहुत सारे रिश्तेदार उस इलाके में थे। कोसी का कछार, जंगल से भरा था और नेपाल की सीमा में था। सूरज बाबू जैसे साथी उनकी शारीरिक शक्ति थे तो बेनीपुरी जैसे साथ आत्मिक व मानसिक शक्ति। मेरे सभी साथियों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा मेरे लिए'—जेपी जैसे बड़े गंभीर हो चले थे। अभी तक पूरी तरह मौन बैठे सिद्धराज ढड्ढा, जो सबकी बातों को बड़ी गंभीरता से सुन रहे थे, ने अपना मौन तोड़ते हुए कहा कि उन्होंने भी बेनीपुरी रचित *जयप्रकाश* पढ़ी है और वे उनकी न केवल भाषा बल्कि तथ्यों

को समझने और उनके प्रस्तुतिकरण के भी कायल हैं। *जयप्रकाश* की शैली किसी उपन्यास से कम रोचक नहीं। इस बीच कुछ स्मरण करने का प्रयास करते हुए जेपी ने वाक्यों के टुकड़ों में बताया कि बेनीपुरीजी की किसी पुस्तक की भूमिका लिखते हुए उन्होंने बेनीपुरी की तुलना 'लुडविग' जैसे चरित लेखक के शब्द-चित्र खींचने की कला से की थी। धीरे-धीरे चर्चा का रुख साहित्य की ओर मुड़ चला था। कला और साहित्य पर भी आवश्यक पकड़ रखने वाले सच्चिदानंद की बॉडी लैंग्वेज बता रही थी कि वे कैसे खुद को समेट पा रहे हैं। सच्चिदानंद इस बात से दुखी थे कि बेनीपुरी जी के अलावा किसी ने भी 'अगस्त-क्रांति' और उसके नायक के साथ न्याय नहीं किया। लोगों में भारी गलतफहमियां ही फैलायी गयीं। बेनीपुरी ने जिस समय सन् '74 से *जयप्रकाश* की रचना की उसी समय प्रो. बलदेव नारायण ने कांग्रेस के कहने पर अगस्त क्रांति की घटनाओं पर सूचनाओं का संकलन शुरू किया लेकिन उससे कांग्रेस संतुष्ट नहीं थी। उसने इसे प्रकाशित करने से ही मना कर दिया। किन्तु उसी वर्ष बेनीपुरी जी ने अगस्त-क्रांति से लेकर आजादी के बाद तक के जेपी के विचारों का संकलन कर एक पुस्तक प्रकाशित की, *जयप्रकाश की विचारधारा।* यदि वे आज होते तो शायद अपने नायक के बाद के विचारों को भी संकलित करते और *जयप्रकाश* के जीवन चरित को परिपूर्ण करते।

समय गुजरता जा रहा था। एक जीवंत इतिहास अपने पलटते पन्नों में बहुत कुछ तलाश रहा था।

'...जल्दी चले गये, अभी साथ देना था', बुदबुदाकर जेपी चुप हो गये।

ढड्ढा जी ने ताड़ लिया कि जेपी अब पुरानी यादों में लौट रहे हैं। उन्होंने जेपी को वापस लाने के लिए पूछा—'बेनीपुरी जी पहले क्या थे—समाजवादी या साहित्यकार?'

जेपी ने झट बिना समय गंवाए जवाब दिया—'अभाव में जन्मे वे जन्म से ही समाजवादी थे और लेखन कला तो ईश्वर की उन्हें विशेष देन थी।'

सच्चिदानंद की बातों से प्रभावित दिखे ढड्ढा जी। उन्होंने 'अगस्त-क्रांति' और 'आजाद-दस्ता' के स्वतंत्रता आंदोलन में प्रभाव का सही विश्लेषण की आवश्यकता बतलाते हुए जेपी से कहा—'जेपी अभी अगस्त-क्रांति और 'आजाद दस्ता' में भाग लेने वाले सहभागी साथी जीवित हैं। चतुरानन बाबू और अवध बाबू जैसे लोग आये हुए हैं। क्या इस पर एक तथ्यात्मक पुस्तक लिखने की आवश्यकता नहीं है?' जेपी ने हामी भरी और चतुरानन बाबू तो जैसे खुशी से भर गये। जेपी ने कहा—'अगस्त क्रांति और आजाद-दस्ता में हमने भाग लिया था, आजादी की लड़ाई में इसका क्या योगदान था, सही मूल्यांकन तो होना ही चाहिए।' सिद्धराज ढड्ढा मेरी ओर देख बोले—'क्या अशोक जी! पुस्तक लिखने का यह काम आप करेंगे?'

इस अप्रत्यासित सवाल के लिए मैं तैयार नहीं था, अतः अभी कुछ बोल पाता कि जेपी पूछ बैठे—'क्या हुआ? क्या जवाब दिया तू ने? क्या तुमने स्वीकारा?' बेसाख्ता मेरे मुंह से निकला—'जी जेपी। आप सबों का आशीर्वाद है...अवश्य लिखूंगा।'

जेपी और सिद्धराज जी ने चतुरानन बाबू से आग्रह किया कि वे नेपाल जाकर प्रारम्भिक कार्य शुरू कर दें और जब अशोक जी को बुलाना वाजिब समझें इसकी सूचना हमें दे दें।

सच्चिदानंद ने जेपी को आश्वस्त किया कि जब भी वे अशोक को बुलायेंगे इन्हें कार्यालय (जेपी सचिवालय) के कार्य से मुक्त कर भेज देंगे।

यह भी निर्णय किया गया कि इसके लिए आवश्यक खर्च अमृत-कोष ट्रस्ट वहन करे। साथ ही, जेपी की ओर से एक अपील भी जारी की जाए ताकि लोग अपने स्तर से जानकारी उपलब्ध कराने में दिलचस्पी दिखायें।

अब जेपी के डायलिसिस का समय हो चुका था, उन्होंने प्रणाम कर सबों से अनुमति ली। अतिथियों के साथ हम सब नीचे उतर गये।

2 नवंबर, 1978

आज के अखबार में 'आजाद-दस्ता' के नेपाल के साथियों के साथ जेपी से मुलाकात संबंधी समाचार प्रकाशित हुआ है। सच्चिदा बाबू आज अपने घर से बेनीपुरी लिखित किताब *जयप्रकाश* ले आये हैं। मैं उन्हें बताता हूं कि राजेन्द्र बाबू की जीवनी और जेपी की जीवनी *जयप्रकाश* मैंने नौवीं कक्षा में ही पढ़ी थी।

बड़ी उत्सुकता से पुस्तक पलटता हूं तो पाता हूं कि यह पुस्तक 1967 में प्रकाशित नवीनतम संस्करण है। दूसरे नवीन संस्करण की भूमिका पढ़कर मन गद्‌गद हो जाता है। सोचता हूं, जेपी और बेनीपुरी जी का यह कैसा हृदय का अद्‌भुत संबंध है! बेनीपुरी अपने नायक जयप्रकाश से बिल्कुल निराश नहीं हैं। उन्हें संतोष है कि अगस्त-क्रांति का अग्रदूत देश में शांति दूत का पवित्र कार्य कर रहा है। वह जीवन यात्रा में भटका नहीं है। अंधेरे में राह टटोल रहा है। अपने लिए किसी छोटे या बड़े दल में राजनीतिक शक्ति का विस्तार करने के लिए नहीं, वह देश के लिए प्रकाश की खोज कर रहा है—शांति की तलाश में है।

बेनीपुरी लिखते हैं—'जिस साथी की कभी मैंने पूजा की थी आज वह पूज्य और महान इसलिए बना हुआ है कि वह देश की मानवता की सुख-समृद्धि की तलाश में है। भले ही आज उसके हाथों में मशाल नहीं, सर्वोदय और जन-सेवा का मंद-मधुर दीप जल रहा है।'

अपनी वेदना वे छुपाते नहीं—'आज जब वर्षों से पक्षाघात से पीड़ित हूं...मेरे चरित्र नायक ने राजनीति से संन्यास लिया और पक्षाघात से पीड़ित होने के कारण मेरी लेखनी ने भी विश्राम ही ले लिया है। लगता है, यह प्रतिभा अब सोची-सोची ही रहेगी।'

बेनीपुरी जी की आस्था किन्तु सबल है। जयघोष करते कहते हैं—'मेरी तो कामना थी देश को सुखी-समृद्ध देखने की—वह अधूरी ही है। पर यह कामना अब भी शेष है। जयप्रकाश आगामी वर्षों में देश के इस विघटन, बिखराव, अंधकार और निराशा के घुटनपूर्ण वातावरण में नया प्रकाश, नई किरण दें, यह अंधकार फटेगा, निराशा टूटेगी—देश के आगे नया स्वर्ण विहान होगा—जब गांव-गांव और नगर-नगर में जीवन की स्वच्छता, सुख-सुविधा समान रूप से फिर वितरित होगी—जयप्रकाश की इस पुनीत भावना का जयघोष करता हूं।'

अपने देहावसान 7 सितंबर 1968 से लगभग 18 माह पूर्व बेनीपुरी जी का जेपी के लिए जयघोष और बेनीपुरी जी के लिए जेपी का यह वाक्य—'...जल्दी चले गये, अभी साथ देना था' जेपी के हृदय की पीड़ा की हम सहज कल्पना कर सकते हैं। काश, बेनीपुरी जी आज होते तो वह देखकर कितना प्रसन्न होते कि उनका जयघोष कितना सच हुआ है। अगस्त-क्रांति का उनका नायक आजादी की लड़ाई में न ब्रिटिश शासन से हारा, न ही स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र बनाम तानाशाही की लड़ाई में स्वदेशी शासन से, बल्कि 1942 की अगस्त-क्रांति का नायक 1974 के सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन में तो नायक से लोकनायक बन गया है।

मैं इस पूरे घटनाक्रम को ईश्वर की योजना मानता हूं। अस्तु जेपी के सपने और बेनीपुरी जी के अधूरे कार्य को पूरा करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा करता हूं।

साभार, 'स्मरण बेनीपुरी', सं. महेन्द्र बेनीपुरी ❑

लघु-कथा

घासवाली

❑ रामवृक्ष बेनीपुरी

वह दिनभर घास छीलती और शाम को निकट के शहर ले जाकर बेचती। यही उसका पेशा था। पेशे में आनन्द क्या, उत्साह क्या! वह तो नित्य करने की चीज ठहरा! किन्तु उस दिन उसने उसमें आनन्द भी पाया, उल्लास भी अनुभव किया।

वह बहुत देर तक घास न बिकने के कारण चौराहे पर खड़ी थी। विपदा यह थी कि कल ही होली है। त्यौहार कैसे मनाया जाएगा? झुटपुटे का वक्त आया, वह अकेली घर कैसे, कब तक पहुँचेगी? उदासी का यह दूसरा कारण हुआ। इतने में इक्केवान आ पहुंचा। हंसमुख नौजवान मुस्कराते हुए बोला 'कितना लेगी रे'?

'सिर्फ दो आने'

इक्केवान मुस्कराया और मुँह माँगा दाम दे चलता बना।

चौराहे की बिजली के प्रकाश में दो जोड़ी आँखें चमक उठीं। लौटते समय जीवन में पहली बार उसने काठ के घेरे वाली कंघी खरीदी और खरीदा एक पैसे का तेल। होली के सौदे भी हुए। वह नित्य आती, घास लिए प्रतीक्षा करती और मुंह अंधेरा होने पर जब नौजवान इक्केवान पहुंचता, घास के जो पैसे वह देता, लेकर वह चल देती। भाव-ताव कुछ नहीं, प्यार में दो-एक चुहल हो जाती। अब उसके सिर से नारियल के तेल की तीखी गंध निकलती क्योंकि उसमें कपूर भी डालता था। बालों में एक सुलझाव दीखता और आंखों में भी।

उस दिन वह चूनर पहन कर आयी थी। सन्ध्या को इक्केवाला आया और उसने घास ली, पैसे देते समय ढिलाई से उसके गाल पर एक हुदक्का भी दिया। समूचा शरीर झनझना उठा उसका। और बेहोशी में ही उराने अपने को इक्के पर चढ़ा पाया। इक्का भागा जा रहा था, उस पर बरूठी उड़ती-सी अनुभव कर रही थी। वह कहां जा रही थी! प्रतिदिन आती। अब घास कम पैसे अधिक मिलते। उसके सिर में चमेली की सुवास निकलती।

दस वर्ष बाद। शाम का वक्त। चौराहे पर एक अधेड़ स्त्री बैठी थी। वह हरे चने की दाने बेचती रहती है। उसके निकट एक बच्चा है। पांच वर्ष के लगभग का। जब वह जिद करता है, चने के पैसे से एकाध धेले की गुलाबछड़ी खरीद देती है।

उस दिन एक अपूर्व खरीददार आया, कोट-पैंट पहने। एक-पैसे का चना मांग रहा था। जब तोलकर देने को उसने सिर-ऊपर किया तो बिजली के प्रकाश में उसका चेहरा देखकर वह चिल्ला पड़ी—'मोहन!' वह बोली, 'कहां रहते हो मोहन'?

'कलकत्ते में मिस्त्री हूं'!

'और इक्का...

शायद और कुछ बात होती किन्तु इतने में ही एक पूर्ण हट्टा-कट्टा पुरुष आ गया। 'क्यों, चने अब तक नहीं बिके?' उसने पूछा।

'यह रामू के बाबूजी हैं, मोहन! 'उस स्त्री ने इस लहजे से कहा जिसका अर्थ था, यह मेरे पतिदेव हैं।

'राम-राम भाई साहब!' मोहन बोला। चने लिए, पैसे फेंके और चल पड़ा।

उधर मोहन, इधर सुकिया मन-ही-मन उस सन्ध्या की याद कर रहे थे, जब दोनों इसी जगह से इक्के पर चले थे, डरते-डरते, फुर्र-फुर्र और शुक्रतारे को देख रात कितनी बिती, इसका अनुमान किया था उन्होंने! गरीबों का प्रेम ऐसा ही होता है। तालाब में एक ढेला गिरा, कुछ तरंगे उठीं। फिर पानी शांत। समुद्र में, ज्वार-भारटे तो महलों को ले उड़ते हैं। ❑

सामयिकी

राजनीति को लतीफा बना दिया जाना

❑ चिन्मय मिश्र

बड़े एहतियात से, नश्तर लगाए जाते हैं,
मगर लहू है कि, लम्हा बा लम्हा रिसता है।
–खुर्शीद अनवर

नोटबंदी करने के बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जापान चले गये थे। बुलेट ट्रेन में बैठकर कावासाकी के कारखाने भी गये। वहां रहने वाले भारतीयों ने वंदे मातरम् और भारत माता की जय के नारे लगाये। जवाब में प्रधानमंत्री ने उन्हें कुछ चुटकुले सुनाये जैसे कि कांग्रेस तो अपने राज में चवन्नी ही बंद कर पायी थी और गंगा में जहां पहले लोग 1-2 रुपये के सिक्के डालते थे, अब 500-1000 रुपये के नोट बहाये जा रहे हैं। दिल्ली लौटे तो बिना आराम किये गोवा, बेलगांव और पूना पहुंचे। गोवा में भी उन्होंने अपने चुटकुले दोहराये, उसके बाद उन्होंने कुछ देर वीरता का प्रदर्शन किया और भाषण का अंत अत्यन्तु भावुक हो भरी आंखों से अपनी जान पर बन आये खतरे, वह भी नोटबंदी के कारण पर किया। यदि भारत के प्रधानमंत्री को अपनी जान पर खतरा महसूस हो रहा है तो हम और आप अब क्या करें?

भारतीय राजनीति की एक विशेषता यह बनती जा रही है कि जब परिस्थितियां सत्ताधारी दल के प्रतिकूल जाने लगें तो एक विवादास्पद निर्णय लेकर विमर्श की पूरी धारा को एक ही दिशा में प्रवाहित कर दो। यदि कोई सवाल पूछता है या बहस की बात करता है तो कहा जा रहा है कि सारी चर्चाएं देशहित के दायरे में ही होगी। अब देशहित का कोई तयशुदा पैमाना या गणित जैसा कोई हल तो है नहीं कि 1+1=2 ही होते हैं। परंतु वर्तमान सत्ताधारी दल का यह स्पष्ट मानना है कि देशहित की उसकी परिभाषा ही अंतिम है। ऊरी सैन्य शिविर पर हुए हमले की परिणिति सर्जिकल स्ट्राइक में हुई और इसका एंटी क्लाइमेक्स लंबा और मेलोड्रामेटिक होता जा रहा है। इसमें भारत और पाकिस्तान दोनों ओर की सैन्य व असैन्य जनसंख्या मारी जा रही है। परंतु सवाल पूछना तो अब देश विरोधी है। ऐसा लगातार हो रहा है कि राजनीति को कमतर बनाने की भरपूर कोशिशें हो रही हैं। यदि आप सरकारी दूरदर्शन देखें तो आपको हर दूसरी पंक्ति के बाद सुनने को मिलता है कि देशहित के इस मामले में राजनीति न की जाये। तो फिर राजनीति है किसलिए? आज से करीब 2500 वर्ष पूर्व यूनान के महान नाटककार और दार्शनिक पेरीक्लीज ने अपने ग्रंथ 'फ्यूनरल ओरेशन' (मनहूस या दफन व्याख्यान) में कहा था—*'नीति तय करने वाले लोग तो थोड़े से ही होते हैं, मगर उनका खरा-खोटापन देखना, जानना, कहना हर आदमी का काम और हक है।'* पश्चिम भारत की यात्रा से लौटकर प्रधानमंत्री उत्तर भारत की यात्रा पर गये और गाजीपुर में उन्होंने अपने निर्णय की तुलना कड़क चाय से की। इस बीच खबर है कि पिछले आठ दिनों में नोट बदलवाने वाली भीड़ में और इस आदेश से दशहत में आये 45 से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं या आत्महत्या कर चुके हैं *(अब यह संख्या काफी बढ़ गयी है—सं.)*। इसमें वे 10-12 बैंककर्मी शामिल नहीं हैं जो कि व्यवस्थाओं को ढर्रे पर लाने की प्रक्रिया में दुर्घटना या हृदयाघात से मारे गये हैं।

जाहिर है यह सब कुछ देशहित में हुआ है। तभी तो हमारे एक मंत्री संसद में कह गये कि नोटबंदी की वजह से कश्मीर में आतंकवाद और मध्यभारत में माओवाद पर रोक लग गयी है। इस लिहाज से तो नोटों का प्रचलन बंद करना ही सबसे सुरक्षित विकल्प हो सकता है। हमें पुनः वस्तु विनिमय के युग में प्रविष्ठ होने का प्रयास करना चाहिए। *गौरतलब है कि 30 दिसंबर 2016 को जब (सरकार के हिसाब से) परिस्थितियां सामान्य हो जायेंगी और इस आर्थिक सर्जिकल ऑपरेशन के टांके कट जायेंगे क्या तब भी यही स्थितियां कायम रहेंगी? और यदि ऐसा नहीं हो पाया तो क्या सरकार मानेगी कि उसका निर्णय गलत था?* हो सकता है तब वे गालिब को दोहराते हुए कहें कि *'जालिम में है, कुछ बात और, इसके सिवा भी'*। एक अन्य मंत्री ने नोटबंदी की तुलना प्रसवपीड़ा से की है। पहली बात तो यह कि इस पुरुषवादी पितृसत्तात्मक समाज में पीड़ा झेलने की समूची जिम्मेदारी वस्तुतः महिला पर ही आती है। बाज समय बच्चा विकृत, विकलांग (दिव्यांग) अल्पविकसित और कई बार तो मृत भी पैदा होता है। भारत में 80 प्रतिशत महिलाएं खून की कमी (एनिमिया) से ग्रसित हैं। प्रत्येक प्रसव कमोवेश उनके लिए जानलेवा होता है। अतएव आवश्यकता इस बात की थी कि आर्थिक सर्जरी से पहले देश की अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने का प्रयास भी किया जाता।

लोकतंत्र में सवाल पूछने के अधिकार को चुनौती देना, इसे नष्ट करने की ओर ले जाना है। परंतु लोकतंत्र देशहित से बड़ा या ऊपर थोड़े ही होता है? हिटलर भी यही तो कहता और करता रहा और परिणाम दूसरे विश्वयुद्ध के रूप में और हिटलर के पतन के साथ सामने आये। हम और हमारा देश अभी उस स्थिति पर नहीं पहुंचा है, अतएव इस पर अभी लगाम लगाना अनिवार्य है। वैसे प्रतीत चाहे जो हो परंतु राजनीति सर्वाधिक गंभीरता और धैर्य की मांग करती है। फिल्मकार चार्ली चैपलीन को तमाम लोग 'कॉमेडी' का बादशाह कहते हैं। उनकी फिल्मों को कॉमेडी फिल्में भी कहते हैं। परंतु यह फिल्में दुनिया में अब तक की फिल्मों में सबसे गंभीर व राजनीतिक परिपक्वता की मिसाल हैं। तभी तो

दुनिया के सबसे उदार, महान व पुराने 'लोकतंत्र' अमेरिका ने उन्हें अपनी नागरिकता नहीं दी और अपने यहां उनके आने तक को प्रतिबंधित कर दिया था। इसीलिए चुटकुले और व्यंग्य के अंतर को समझना होगा। मंचीय हंसोड़ कवियों की जमात में मुक्तिबोध की 'भूल गलती आज बैठी है पहनकर जिरहबख्तर' को समझना आसान नहीं है। चैस्टरटन ने कहा था, *'लोकतंत्र निष्कंटक तो शायद नहीं हो पायेगा, इसे निष्कंटक बनाने की कोशिश भी एक खतरे से भरा काम है।'* परंतु आज दुनिया में हर देश व उस देश के राजनीतिज्ञ अफसर अपने ही तरह का एक 'परिपूर्ण लोकतंत्र' चाहते हैं। क्या ऐसा हो पाना संभव है?

भारत में इसके दुरुपयोग के मामले भी लगातार बढ़ते जा रहे हैं। गौरतलब है पिछले दिनों नदी जलवितरण मामलों यथा कर्नाटक में कावेरी जल विवाद और पंजाब में सतलुज यमुना लिंक नहर को लेकर सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों के विरुद्ध कर्नाटक व पंजाब के विधानसभाओं के विशेष सत्रों को आयोजन कर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के खिलाफ प्रस्ताव पारित हुए। इसकी पृष्ठभूमि संभवतः नर्मदा घाटी में बन रहे/बन चुके सरदार सरोवर एवं अन्य बांधों के मामले में कानूनों और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को संबंधित राज्य सरकारों, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश व केन्द्र सरकार द्वारा न मानने व अवहेलना करने से भी तैयार हुई है। जब सारा देश नोटबंदी से उलझ रहा है तब पंजाब विधानसभा ने इस असाधारण प्रस्ताव को न केवल पारित किया बल्कि दिल्ली व हरियाणा को दशकों से दिये जा रहे 'मुफ्त' पानी के बदले धन की मांग भी कर डाली। *गोया कि पानी अब राज्यों के उपभोग की वस्तु ही नहीं उनकी सम्पत्ति भी बन गया है। इसके दूरगामी परिणाम सिरहन पैदा करने वाले हैं। हमें ध्यान रखना होगा कि भारत को आतंकवाद, माओवाद व कालेधन से शायद उतना बड़ा खतरा नहीं है, जितना कि विधायिका व न्यायपालिका के खुले टकराव से है। इस टकराव से हमारा संघीय ढांचा भी खतरे में पड़ सकता है। दुनिया के अनेक देशों में तानाशाही के पनपने के मूल में इसी तरह के आपसी संघर्ष रहे हैं।*

परंतु हमें तो सिर्फ देशहित में बोलना है। इसलिए संविधान के सूत्र वाक्य 'हम भारतवासी' को झुठलाते हुए हम पंजाबी, हम मराठी, हम उड़िया, हम मध्य प्रदेश, हम यूपी वाले, हम बिहारी आदि-आदि बनते जा रहे हैं। पंडित नेहरू कहते थे, *'जब तक व्यक्ति नहीं बढ़ता, उसका विकास नहीं होता, मुझे तो प्रगति का कोई मतलब ही समझ में नहीं आता। यह व्यक्तिगत प्रगति तब तक नामुमकिन है, जब तक उसे जितनी आजादी अपनी बात करने की है, उससे और ज्यादा आजादी नहीं मिलती। और इसके साथ बात ही उसे उस ख्याल के मुताबिक अपने ही ढंग से काम करने का मौका नहीं मिल जाता।'* नोटबंदी के विरोध में या उसकी आलोचनात्मक टिप्पणी करने वालों के खिलाफ सोशल मीडिया में जिस तरह की गंदी, अश्लील व वीभत्स प्रतिक्रियाएं आ रही हैं, उससे साफ जाहिर है कि पूरा तंत्र सिर्फ उन्हें ही 'अभिव्यक्ति की आजादी' का सुपात्र मान रहा है। बाकी तो देशहित के खिलाफ ही हैं। थोड़े दिनों में शायद इस आर्थिक सर्जिक ऑपरेशन के घाव भर जायेंगे, लेकिन याद रखिये बड़े ऑपरेशन के निशान हमेशा बने रहते हैं। ये निशान उन लाखों ट्रक ड्राइवरों के मन में बने रहेंगे जो कई दिन तक भूखे रहे, उनके दिमाग में बने रहेंगे, जिनके परिवारजन अस्पतालों में बिना नई करेंसी के दम तोड़ गये, और उन छोटे व्यापारियों के बहीखातों में दर्ज रहेंगे जिनकी बिक्री में 70 प्रतिशत की कमी आयी है। यह उन करोड़ों देशवासियों के नाखूनों में दर्ज रहेंगे जिन्होंने नये पुराने नोटों की अदलाबदली की है। यह एक अंतहीन सिलसिला है। इस बेइज्जती के बाद हम शायद सोचें कि राजनीति को चुटकुलों या लतीफों के संसार से बाहर कैसे लाया जाये। ❑

देश बचाना नहीं है विकास का विरोध

❑ **जगत जतनकर**

इंटेलीजेंस ब्यूरा (खुफिया ब्यूरो) द्वारा नवनियुक्त प्रधानमंत्री को प्रस्तुत रिपोर्ट के मुताबिक विदेशी धन पोषित कुछ गैर सरकारी संगठन भारत के आर्थिक विकास को बाधित कर रहे हैं। यह संगठन देश में कोयला खनन, परमाणु विद्युत केन्द्र, जीनांतरित फसल, नदियों को जोड़ने की योजना, औद्योगिक कोरिडोर जैसी परियोजना में बाधक हैं। इससे देश के कुल घरेलू उत्पादन (जीडीपी) में 2 से 3 प्रतिशत की कमी होती है। यदि विदेशी धन के बल से देश विरोधी प्रवृत्ति चलती है तो उसे रोकना चाहिए। वैसे कई गैर सरकारी संस्थाएं (एनजीओ) भी सामाजिक काम के बजाय स्वहित साधते हैं।

इस रिपोर्ट में वेडछी के संपूर्ण क्रांति विद्यालय के कार्यकर्ता डॉ. सुरेन्द्र गाडेकर, तमिलनाडु के एस.पी. उदयकुमार, धरमपुर तालुका के जंगलों में आदिवासियों के उत्थान के लिए 45 वर्ष से सेवायज्ञ चलाने वाले सर्वोदय परिवार ट्रस्ट पिंडवल और वहां की कार्यकर्ता सुजाता शाह, भूदानयज्ञ के दौरान विनोबा की प्रेरणा से बना हुआ गुजरात सर्वोदय मंडल और गांधीजी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ का भी उल्लेख किया है। इसके अलावा देश में सजीव खेती का प्रसार करने वाली कविता कुरुगंती, बीज संरक्षण, बीज अधिकार और सजीव खेती के क्षेत्र में पूरी जिन्दगी खपा देने वाली डॉ. वंदना शिवा, डॉ. सुमन सहाय, अरुणा रोड्रिक्स को भी जिम्मेदार ठहराया है। ग्रीनपीस, एम्नेस्टी इंटरनेशनल, पीयूसीएल जैसी पर्यावरण और मानव अधिकार के संरक्षण के लिए काम करने वाली संस्थाओं को जिम्मेदार बताया है।

वस्तुतः देश का विकास केवल आर्थिक मानकों के आधार से नहीं बल्कि उसमें

प्रदूषण पर्यावरण की स्थिति, आरोग्य, शिक्षण, महिलाओं और बच्चों की स्थिति, गांव, किसान, खेती और आदिवासियों की स्थिति को ध्यान में रखकर नापना चाहिए। यूं भी आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या की जीडीपी में गिनती नहीं है! इसमें न तो कुछ नया है न ही गुप्त। यह अनगढ़ व उतावलेपन में तैयार की गयी तथ्यहीन रिपोर्ट है। कोई निष्णात अर्थशास्त्री भी जीडीपी कम होने के कारणों का सीधा गणित नहीं बता सकता है। सायास लीक की गयी इस रिपोर्ट को तैयार करने वाले अधिकारी के नाम भी प्रकट किये गये हैं।

उपरोक्त आंदोलन आम आदमी के समर्थन से ज्यादा व्यापक व तीव्र हो रहे हैं। उसके कारण कई परियोजना विलंब में हैं। वेदांत की ओडिशा में योजना व बीटी बैंगन भी रुके हैं। जो लोग पर्यावरण संरक्षण के लिए और स्वास्थ्यप्रद आहार के लिए लड़ रहे हैं उनको ही दोषी ठहराने का प्रयत्न हो रहा है। वैसे इस रिपोर्ट को तैयार करने की कार्यवाही पिछली यूपीए सरकार से शुरू हुई थी। यानि सरकार बदल जाये लेकिन दोस्ती थोड़ी ही बदलती है।

आज जनआंदोलनों का संदर्भ भी वैश्विक हो चुका है। आर्थिक से लेकर पर्यावरण की समस्याओं के बारे में सभी देश एक दूसरे के साथ जुड़े हैं। बाजारों का वैश्वीकरण हुआ है। यूरोपियन यूनियन बना है। सरहदें मिट गयी हैं। वैश्वीकरण के समर्थक भी कहते हैं कि अब राष्ट्रवाद से ऊपर उठना होगा, तभी तो व्यापार विकसित होगा। इस संदर्भ में विश्व की दाता एजेंसियां केवल अपने ही देश में नहीं, लेकिन पूरी दुनिया में और खास करके तीसरे विश्व में स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, पर्यावरण, नागरिक अधिकार, प्राकृतिक स्त्रोतों का संवर्धन आदि पहलुओं पर काम करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं को धन देती हैं।

गौर कीजिए मार्च 2014 में वेदांत जूथ कंपनी ने कांग्रेस और भाजपा को धन दिया। इस बात को दिल्ली उच्च न्यायालय ने विदेशी सहायता नियमन कानून (एफसीआरए) का उल्लंघन बताया। यदि देश में परमाणु विद्युत केन्द्र खड़े करने हों तो केवल विदेश की सरकार से ही नहीं, बल्कि अरेवा जैसी फ्रेंच कंपन तथा जीई हिटाची और बेस्टिंग इलेक्ट्रिक जैसी अमेरिकन कंपनियों का विदेशी धन लेने में भी सरकारों को कोई आपत्ति नहीं है। ईबेना नामक कंपनी के अरबपति मालिक पेरी ओमिड्यार 'सेवाभावी' संस्था चलाते हैं, जिसका नाम है ओमिड्यर नेटवर्क। सन् 2003 के बाद इस संस्था ने भारत में सबसे ज्यादा धन लगाया है। भाजपा के एक नेता के पुत्र को उसके सलाहकार के तौर पर रखा है। यह सलाहकार अब सांसद बन गया है और प्रधानमंत्री भी भारत में ई-कॉमर्स व्यवसाय बढ़ाने का प्रवचन दे चुके हैं।

पिछली एनडीए सरकार ने 2002 में राष्ट्रीय जलनीति तैयार की जिससे पानी के निजीकरण के दरवाजे खुले। उसके बाद यूपीए सरकार ने 2012 में जलनीति बनायी। उसमें जल का वितरण और ड्रेनेज प्रणाली के निजीकरण करने की बात आयी। आज फ्रांस की मल्टीनेशनल कंपनियां स्वेज और विओलिया भारत में पानी के निजीकरण की जिम्मेदारी उठाने के लिए तैयार हैं।

अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति बुश द्वारा भारत अमेरिका ज्ञान पहल के नाम से अमेरिकी कंपनियों को अपनी तकनीक भारत में बेचने और पैसा लगाने का वातावरण तैयार किया गया था। जीएम बीज लाने वाली कंपनियों को भी पैसा लगाने की अनुमति दी गयी है। प्रसिद्ध बीज कंपनी महिको के साथ मिलकर मोन्सेन्टो ने लाखों डॉलर लगाये हैं। यह फेहरिस्त बहुत लंबी हो सकती है। कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में खुदरा बाजार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का वचन दिया था। नई सरकार के लिए भी विदेशी निवेश मुकुट का तुर्रा है।

सन् 1991 में आये उदारीकरण के बाद वेदांता के अनिल अग्रवाल ने कहा था 'यदि हमें तेल खनन की पूरी छूट दी जाए तो कैर्न इंडिया भारत को वर्ष भर में एक लाख करोड़ रुपया कमा कर दे सकती है। जिससे जीडीपी में 1 प्रतिशत की वृद्धि होगी। यह तो आने वाली पीढ़ी से छीनकर कमायी दिखाने का छल है। स्वदेशी जगरण मंच जैसी संस्था के कार्यकर्ता अब क्या कर रहे हैं?

विदेशी धन से जनता को भोजन दें, बीमारों की सेवा करें, मदद करें, तो चलेगा। लेकिन भोजन मांगना ही न पड़े, बीमारी आये ही नहीं व मदद मांगनी ही न पड़े ऐसी परिस्थिति पैदा करने के लिए संघर्ष पर सरकारों को आपत्ति है। तकलीफ किससे है? विदेशी धन से या जनता की बढ़ती आवाज से? वैसे तो आईबी की पूरी रिपोर्ट हास्यास्पद है। विश्व बैंक का कहना है कि भारत को पर्यावरणीय हानि की कीमत जीडीपी के 5.7 प्रतिशत के बराबर चुकानी पड़ती है। साथ ही विश्व के अनेक विकसित देश परमाणु ऊर्जा से किनारा कर चुके हैं। ऐसा ही जीनांतरित बीजों को लेकर भी है।

रिपोर्ट की भाषा से स्पष्ट लगता है कि आईबी ने मान लिया है कि कोयला खनन द्वारा, परमाणु ऊर्जा केन्द्रों की स्थापना से, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा जी. एम. फसल लाने से और आदिवासियों के अधिकार छीनने से ही देश का विकास होगा। आईबी ने वैज्ञानिक तथ्यों, सरकार की समितियों की रिपोर्टों, संविधानीय प्रावधानों, संसदीय प्रक्रिया और आम जनता के स्वास्थ्य की भरपूर उपेक्षा की है।

भारत में सरकारों को उसी विदेशी धन से आपत्ति है, जिससे जनता जागृत होती है, जल-जंगल-जमीन बीज के लिए अधिकार मांगती है, पर्यावरण संरक्षण होता है, परिवेश प्रदूषणमुक्त होता हो स्वास्थ्यप्रद भोजन तथा मानव अधिकार मिलते हों। इससे सत्ताधीशों को अपने सिंहासन डगमगाने का डर लगता है!

केन्द्र की नई सरकार ने गंगा, काशी की सफाई करने का दावा है। लेकिन गंदगी तो प्रधानमंत्री कार्यालय, गृह मंत्रालय और खुफिया एजेंसी के दफ्तर तक ही नहीं बल्कि दिमाग में प्रवेश कर चुकी है। क्या इस गंदगी की सफाई को प्राथमिकता नहीं दी जायेगी? ❑

प्रत्येक धर्म का सम्मान हो

❑ भारत डोगरा

भारत के विभाजन को लेकर उठी चर्चाओं के बीच गांधीजी ने कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण टिप्पणियां की थीं। यदि पाकिस्तान के तत्कालीन हिमायती उनकी बात मान जाते तो दुनिया शायद आज इतनी हिंसक नहीं होती।
–सं.

महात्मा गांधी जीवनभर सभी धर्मों की एकता और सद्भावना की राह को तलाशते रहे। इसके लिए उन्होंने कई प्रयोग किये। कभी अधिक सफलता मिली तो कभी कम। पर उनके प्रयास इस धूप-छांव के बीच जारी रहे।

जनवरी 1948 में अपनी शहादत से कुछ ही दिन पहले एक उपवास के दौरान उन्होंने कहा था, जब मैं नौजवान था और राजनीति के बारे में कुछ नहीं जानता था, तभी से मैं हिन्दू, मुसलमान, वगैरा के हृदयों की एकता का सपना देखता आया हूं। मेरे जीवन के संध्याकाल में अपने उस स्वप्न को पूरे होते देखकर मैं छोटे बच्चों की तरह नाचूंगा। ऐसे स्वप्न को सिद्ध करने के लिए कौन अपना जीवन कुरबान करना पसंद नहीं करेगा? तभी हमें सच्चा स्वराज्य मिलेगा।

साथ ही उन्होंने कहा कि केवल हिन्दू-मुस्लिम नहीं सभी धर्मों के मानने वालों की आपसी सद्भावना और एकता आवश्यक है। जितने मजहब हैं मैं सबको एक ही पेड़ की शाखाएं मानता हूं। मैं किस शाखा को पसन्द करूं और किसको छोड़ दूं। किसकी पत्तियां मैं लूं और किसकी पत्तियां मैं छोड़ दूं।

मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि इनसान-इनसान के बीच इस तरह का भाईचारा कायम हो जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी सब एक समान शामिल हों, क्योंकि मुझे दुनिया के सब बड़े-बड़े मजहबों की बुनियादी सच्चाई में विश्वास है। मुझे यकीन है कि यह सब मजहब ईश्वर के दिये हुए हैं और उन लोगों के लिए जरूरी हैं जिन्हें ये ईश्वर से मिले। मुझे इस बात का भी यकीन है कि अगर हम अलग-अलग मजहबों के मानने वालों की निगाह से पढ़ें तो हमें पता चलेगा कि सब मजहबों की जड़ एक है। उनका कहना था अगर आप 'कुरान' पढ़ें तो आपको उसे मुसलमानों की नजर से पढ़ना चाहिए, अगर 'बाइबिल' पढ़ें तो निश्चय ही ईसाई की दृष्टि से पढ़ें, और अगर 'गीता' पढ़ें तो हिन्दू की आंखों से पढ़ें। बाल की खाल खींचने से और फिर किसी धर्म का उपहास करने से क्या प्रयोजन हो सकता है। हममें अपने ही धर्म की तरह दूसरों के धर्मों के प्रति भी सहज सम्मान का भाव होना चाहिए। ध्यान रखिए—पारस्परिक सहिष्णुता नहीं, बल्कि बराबर सम्मान का भाव।

महात्मा गांधी दूसरे धर्मों के प्रति मात्र 'सहिष्णु' होने को ही पर्याप्त नहीं मानते हैं, बल्कि उनके प्रति बराबर सम्मान चाहते हें जो कि दूसरे धर्मों को ठीक से समझने, उनकी मूल भावना को समझने से ही संभव है।

आजादी की लड़ाई के साथ-साथ कुछ तत्त्वों ने पाकिस्तान की मांग उठायी तो महात्मा गांधी ने इस मांग का विरोध करते हुए भी इस विरोध को मुस्लिम विरोधी नहीं बनने दिया अपितु उन्होंने इस्लाम धर्म के महान आदर्शों की याद दिलाते हुए कहा कि पाकिस्तान की मांग इन आदर्शों के अनुकूल नहीं है। उनके शब्दों में—मुझे पाकिस्तान की मांग स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होगा यदि मुझे विश्वास करा दिया जाए कि वह उचित है अथवा इस्लाम के लिए हितकारी है। *परंतु मुझे दृढ़ विश्वास है कि मुस्लिम लीग द्वारा पेश की गयी पाकिस्तान की मांग इस्लाम के विरुद्ध है और मुझे उसे पापपूर्ण कहने में कोई संकोच नहीं है। इस्लाम संपूर्ण मानव जाति की एकता और भाईचारे का हिमायती है, न कि मानव परिवार की एकता को छिन्न-भिन्न करने का।*

धर्म के संकीर्ण स्वार्थी ठेकेदारों ने विभिन्न धर्मों के लोगों को आपसी झगड़ों में उलझाया है और साथ ही गरीब लोगों के शोषण को समर्थन देने के लिए भी धर्म का इस्तेमाल करने का प्रयास किया। दूसरी ओर महात्मा गांधी ने जहां विभिन्न धर्मों की आपसी एकता और सम्मान पर जोर दिया, वहीं साथ ही उन्होंने धर्म को गरीब लोगों की भलाई और उनके उत्थान से जोड़ने का विशेष प्रयास किया। उन्होंने कहा—*मूक दरिद्र नारायण के अन्तर में बसने वाले प्रभु के सिवा अन्य किसी ईश्वर को मैं नहीं पहचानता। और मैं इस मूक जनता की सेवा के द्वारा ही परमेश्वर को सत्य के रूप में अथवा सत्य को परमेश्वर के रूप में पूजता हूं।* ❑

'सर्वोदय जगत' के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों की सुविधा की दृष्टि से पत्रिका का हर अंक सर्व सेवा संघ प्रकाशन की वेबसाइट www.sssprakashan.com पर उपलब्ध है। –सं.

गतिविधियां एवं समाचार

कश्मीर में शांति के प्रयास

जम्मू-कश्मीर में तेरह सालों से जारी हिंसा की आग बुझाने और अशांति का शमन करने के लिए नागरिक व समाज भागीदारी के तौर पर सन् 2002 में सर्वोदय आंदोलन के जज्बे में जलियांवाला बाग अमृतसर से कश्मीर शांति मिशन के साथ पैदल चलकर हम श्रीनगर कश्मीर पहुंचे, मार्ग में लोगों से सम्पर्क व संवाद का भी अवसर मिला।

श्रीनगर पहुंचकर कश्मीर समस्या को लेकर संघर्षरत 23 संगठनों के संयुक्त मंच आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेंस के मुख्य कार्यालय में जाकर कश्मीर की दशा व दिशा पर सार्थक बातचीत की। दूसरे संगठनों से भी बातचीत की। जनवरी 2003 में केन्द्र सरकार को कश्मीर शांति मिशन की गतिविधियों व उपलब्धियों की जानकारी दी और केन्द्र सरकार से भी इन संगठनों से सम्पर्क व संवाद कायम करने का अनुरोध किया है कि पाकिस्तान के साथ युद्ध की उपेक्षा देशहित में आवश्यक है। केन्द्र सरकार ने अपनी इच्छाशक्ति का परिचय दिया और वार्ताकार के रूप में श्री एन. एन. बोहरा को नियुक्त किया। प्रधामंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी भूदान दिवस 18 अप्रैल, 2003 को श्रीनगर गये और पाकिस्तान के साथ कश्मीर सहित सभी समस्याओं का समाधान समानता व परस्पर बातचीत द्वारा हल करने की घोषणा की। कश्मीर शांति मिशन की यह उपलब्धि है।

विषाद व अवसाद की उन घड़ियों में जम्मू-कश्मीर की जमीन पर पैदल चलकर गांव-गांव में संपर्क व संवाद कायम कर हिंसा से पीड़ित लोगों के दुःख-दर्द बांटकर, उनके घावों पर सान्त्वना का मरहम लगाकर उनके गमगीन चेहरों से आंसू पोछकर मानवता के संरक्षण का सौभाग्य कश्मीर शांति मिशन को प्राप्त है।

गांव-गांव में प्रवास के दौरान लोगों के दिलों में घर कर गये खौफ को दूर कर उनका मनोबल बढ़ाकर, उनका आत्मविश्वास बहालकर, सामाजिक सुरक्षा का वातावरण तैयार कर विस्थापित कश्मीरी पीड़ितों की घर वापसी सुनिश्चित की है।

विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों व विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों में प्रतिदिन औसतन एक हजार छात्र-छात्राओं व शिक्षकों से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत एवं संगोष्ठियां की गयी। उनमें उनके अहम सवालों का निराकरण किया गया। लाखों की संख्या में इस भावी पीढ़ी ने अशांति के कार्यों में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की और शांतिमार्चों में भाग लिया है।

शस्त्र-प्रशिक्षण के लिए सीमा पार जाने वाले गुमराह युवकों से बातचीत कर उनकी संख्या को शून्य करना और आजादी के नाम पर हिंसक व विध्वंसक गतिविधियों में शामिल युवकों का हृदय व मानस परिवर्तन कर उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने का काम मिशन को मिला है। फलस्वरूप जम्मू-कश्मीर में शांति व सद्भावना का वातावरण तैयार हुआ। जनसहभागिता से आतंकवाद के बुनियादी इलाज के लिए कश्मीर शांति मिशन ने सन् 2002 से 2009 तक जो जमीनी प्रयास किये, उसके कारण कुछ समय तक जम्मू-कश्मीर में शांति रही। परंतु कश्मीर आयी बाढ़ के बाद जो सरकार के सहायता कार्य में धांधलियां हुई और बाढ़ से पीड़ित लोग राहत से वंचित रह गये, उससे वहां पुनः अशांति का वातावरण बनने लगा और उसका फायदा चरमपंथी उठाने लगे। इस दिशा में हमने केन्द्र सरकार से भी अनुरोध किया था परंतु वह उदासीन बनी रही।

फलस्वरूप गत जुलाई में जब सुरक्षा बलों को साथ मुठभेड़ में हिजबुल मुआहिद्दीन के वरहून वानी जिसे पाकिस्तान की सह थी, मारा गया तो कश्मीर में पुनः अशांति पैदा हो गयी, जिसका फायदा अलगाववादी नेता उठा रहे हैं।

दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि इस समय गांव में आंदोलन चल रहा है और स्कूली बच्चों को आगे कर उनके द्वारा सुरक्षा बलों व वाहनों पर पत्थर फेंके जा रहे हैं। सुरक्षा बल संयमित होकर पायलेटगन का उपयोग कर रहे हैं, जिससे पत्थर मारने वाले बच्चों की आंख की रोशनी समाप्त हो रही है। पिछले दो महीने तक मैं स्वयं कश्मीर में रहा। वारामुला, कुपवाड़ा, सोपोर, वाडीपुरा, बड़गांव, नौगांव, सौपियान, बुलगाम, अनंतनाग, पम्पोर, प्रलवाया, तराल आदि क्षेत्रों के गांव में संपर्क व संवाद कायम किया और उन्हें अशांति के कार्यों में भाग न लेने और संयम बरतने की सलाह दी, परंतु दूसरी ओर लोगों के जज्बातों को भड़काकर अपने हित साधन वाले सक्रिय हैं। **–ओमप्रकाश डगवाल,** 'सर्वोदय सेवक'

पंकज जी को जमानत

सभी लोग चार महीने से ज्यादा रह गये जेल, न्याय विलंबित हुआ

पटना हाईकोर्ट के बेंच जस्टिस प्रभात कुमार झा ने आज पंकज जी सहित 18 लोगों के जमानत दे दी। इस अदालत ने आश्चर्य भी व्यक्त किया कि इसके पहले जमानत पर विचार करते हुए जस्टिस अश्विनी कुमार सिंह की अदालत ने फौजदारी मसले पर विचार करने के क्रम में विवादित जमीन पर पुराने दीवानी मामले की जानकारी मांग कर जमानत के निर्णय को क्यों टाल दिया।

इस मामले में पंकज के वकील हैं एडवोकेट अमरेन्द्र वर्मा। विपक्ष में सरकारी वकील के अलावे भूस्वामी परिवार से भी वकील हैं। जस्टिस झा ने भूस्वामी के वकील की इस अपील को किनारे कर दिया कि पंकज सहित गिरफ्तार किये गये लोगों को दावे की जमीन पर जाने से रोकने का आदेश दिया जाये।

इसके पहले बगहा पुलिस ने इन लोगों सहित सभी 23 लोगों पर लादे गये मुकदमों का 'सुपरवीजन' कर दफा 307 को वापस ले लिया।

आगे हम झूठे मुकदमे, विलम्ब से न्याय, पुलिस और न्यायिक प्रक्रिया के साथ-साथ राज्य में गरीब वर्गों के संघर्ष के प्रति सरकार की समीक्षा के लिए एक-दूसरे से साझा करेंगे।**–च.अ. प्रियदर्शी/सिद्धार्थ**

कविताएं

बेनीपुरी की याद

❑ रामधारी सिंह 'दिनकर'

जीवन से हम उतना
प्यार नहीं करते
जितना मौत से डरते हैं
जीने वाले का मोल थोड़ा होता है,
कीमती वो हैं, जो मर जाते हैं।

जीवन ऊपर-ऊपर आनंद भोगता,
गहरी व्यथा केवल मृत्यु जगाती है
बच्चन के साथ मैं, हंसता-खेलता हूं,
याद मुझे बेनीपुरी की आती है। ❑

बेनीपुरी भैया

❑ ब्रजकिशोर नारायण

महीनी के खुम में,
मशक्कत लबालब
मुहब्बत के मयखाने में आइएगा
तो रंगों का आलिम,
कलम जिसकी जालिम
ये तस्वीर प्यारी वहीं पाइएगा।

कहर बख्शिएगा, जहर दीजिएगा
मगर कहकहों से कहां जाइएगा
अदब का अदब, जादूगर बेनीपुरी
उसे जग में फिर से कहां पाइएगा। ❑

एक शून्य : एक गान

❑ केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

मैं

न शोध का विषय हूं
न संशोधन का
एक आंसू था
जो
किसी अंधेरी रात की
पलकों से ढुलककर
रेती के बालू-कणों में मढ़ा गया।
मेरे रचनाकार ने
अपने स्वप्न ने
नहीं चाहा आवरित करना
जैसा दिखता हूं मैं
उसी रूप में गढ़ा गया
सत्य की प्रतिष्ठा होगी
यदि उसी रूप में पढ़ा गया

(2)

रोज सूरज की चिता पर जलता हूं
मैं रोज समय के धुएं से निकलता हूं
मेरे जन्म के फूलों से सजी पृथ्वी
मेरी आयु की बीन से बजी पृथ्वी
वह जो होकर भी नहीं है
वह जो न होकर भी है
दोनों के बीच निरंतर वर्तमान
एक छंद लहूलुहान
जिसे पुजारी
देवता के चरणों पर चढ़ा गया
जैसा दिखता हूं मैं
उसी रूप में गढ़ा गया
सत्य की प्रतिष्ठा होगी
यदि उसी रूप में पढ़ा गया। ❑

प्रतिभा-प्रशस्ति

❑ कलक्टर सिंह 'केसरी'

हर प्रतिभा पर हैं मुग्ध प्राण हैं
लुब्ध नयन
इसलिए कि हर प्रतिभा संस्कृति का–
नव संस्करण नया सिरजन

हर प्रतिभा वंदनीय जैसे सूरज-चंदा
रश्मियां भारती की न जहां
वह तिमिरक्रांत राष्ट्र अंधा

प्रतिभा-प्रभात के बिना न विकसित
हो पायेगा हृदय-हरण–
मानस का स्वर्ग-कमल-कानन।।

इसलिए तुम्हें ओ अमृत-पुत्र,
शतवार नमन।
तुम-सा यदि कोई जादूगर हो पाए
तो *माटी की मूरतें* अमर हो जाएं

कल्पना-पूत जो दिव्य देश का
दर्पण है
जिसमें प्रतिबिम्बित-वंदित
जीवन-दर्शन है

वह कला तुम्हारी स्वयं
तुम्हारा अभिनंदन
इसलिए तुम्हें ओ कलाकार!
शतवार नमन! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।